सूरदास

[शोधपूर्ण जीवन-वृतात]

रचयिता

प्रभुदयाल मीतल

डी लिट्, साहित्य-वाचस्पति

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

प्रकाशक

साहित्य सस्थान,

डेम्पियर नगर, मथुरा—२८१ ००१

प्रथम सस्करण १९८२ ई०

मूल्य बारह रुपये

ते मुकृती रससिद्ध कवि, वदनीय जग माहि।
जिनके सुजस सरीर कहँ, जरा–मरन भय नाहि॥

वितरक

विश्वविद्यालय प्रकाशन

चौक, वाराणसी २२१००१

मुद्रक

भारत प्रिटस, मथुरा—२८१००१

विषय—सूची

विषय	पृष्ठ

प्राक्कथन

●

भक्ति–भागीरथी, काव्य–कलिंदजा और संगीत–सरस्वती की त्रिवेणी प्रवाहित करने वाले महात्मा सूरदास का जीवन–वृत्तांत संपूर्ण रूप मे ज्ञात नही है। यह कैसी विचित्र बात है कि असख्य नर-नारियो के तमाच्छन्न जीवन को अपने महान् कृतित्व की आभा से आलोकित करने वाले उस महा मनीषी के स्वय का जीवन वृत्त अज्ञता के अधकार से आच्छादित है! भक्ति मार्ग के पथिक और दीनता–विनय के स्वरूप होने के कारण उन्होने आत्म–प्रकाशन करने मे जो संकोच किया है, वह उनकी प्रामाणिक जीवनी को जानने मे बाधक बन गया है। यही कारण है कि उनकी रचनाओ मे अत साक्ष्य के रूप मे कुछ थोडे ही सूत्र मिलते है। उनसे सबधित प्रामाणिक, बाह्य साक्ष्य भी अधिक नही हैं। इन स्वल्प सूत्रो से उनके जीवन–वृत्त का विस्तृत ताना–बाना बुनना बडा कठिन है। किंतु इनका समुचित रूप मे उपयोग करने के अतिरिक्त और कोई उपाय भी नही है।

नवश–शास्त्रियो ने नर–नारियो के व्यक्तित्व-निर्माण मे उनके आकार-प्रकार एव रूप–रग को महत्वपूर्ण उपकरण माना है। किंतु सूरदास के सबध मे इनका लेखा भी उपलब्ध नही है। वार्ता साहित्य से केवल इतना ज्ञात होता है कि वे जन्म से ही नेत्रहीन थे, किंतु उनके आकार–प्रकार और रूप–रग के विषय मे उसमे कोई उल्लेख नही है। सयोग से इस समय सूरदास के अनेक चित्र प्राप्त है, जिनमे से अधिकाश प्रामाणिक ज्ञात होते हैं। इनका विशद विवेचन इस ग्रथ के उपसहार मे किया गया है।

सूरदास के जो प्रामाणिक व्यक्ति–चित्र (शबीह) उपलब्ध हैं, उनसे ज्ञात होता है कि उनका आकार लबा और शरीर सुडौल एव बलिष्ट था। उनकी नाक कुछ लबी और भुजाएँ प्रलब थी। इनसे उनका दृढ निश्चयी होना विदित होता है। वे गौर वर्ण और आकर्षक व्यक्तित्व के धनी थे। केवल एक कमी थी कि उनके नेत्र नही थे। उस कमी की पूर्ति के लिए भगवान् ने उन्हे अद्भुत अतर्दृष्टि और अभूतपूर्व वाक्–सिद्धि प्रदान की थी। इन दैवी गुणों ने उनके व्यक्तित्व मे चार चाँद लगा दिये थे! इन चित्रो से उनकी सामान्य वेष–भूषा की भी जानकारी मिलती है, जो उनकी प्रकृति के परिज्ञान मे सहायक हो सकती है। वे सिर पर गोल लाल टोपा तथा कधे पर पीत उपरना या श्वेत अगोछा धारण किया करते थे, और धोती पहनते थे। गले मे तुलसी की कठी और माला होती थी। इन सबसे उनका निष्ठावान वैष्णव होना सिद्ध होता है।

सूरदास सबधी प्रामाणिक उल्लेखो मे पुष्टि सप्रदायी वाड्मय को वरीयता देना उचित होगा, क्यो कि इसी सप्रदाय के आचार्यों और भक्त जनो के साथ उनके जीवन के ७३ लबे वष बीते थे। उस दीघ कालावधि मे उनके जीवन-वृत्त की जो बाते सप्रदाय मे प्रचलित हो गई थी, उन्हे गो० श्री विट्ठलनाथ जी के चतुथ पुत्र श्री गोकुलनाथ जी ने सकलित किया था, और उनके आत्मीय श्री हरिराय जी ने उन्हे व्यवस्थित रूप मे सपादित कर लिपिबद्ध कराया था। श्री गोकुलनाथ जी सूरदास के उत्तर जीवन मे विद्यमान थे, और श्री हरिराय जी का जन्म सूरदास के देहावसान से केवल ७ वष पश्चात् हुआ था। अतएव उनके विवरण प्रत्यक्ष रूप मे देखी गयी और विश्वसनीय व्यक्तियो से सुनी हुई घटनाओ पर आधारित होने के कारण प्रामाणिक माने जावेगे। इस ग्र थ मे वर्णित सूरदास के जीवन-वृत्त का प्रमुख आधार सर्वश्री गोकुलनाथ जी और हरिराय जी द्वारा प्रस्तुत 'सूरदास की वार्ता' के विविध प्रसग ही है। इनकी पुष्टि श्री गोकुलनाथ जी के समकालीन वृ दावन निवासी प्राणनाथ कवि कृत 'अष्ट सखामृत' मे सूरदास क विवरण स, रामोपासक भक्त-कवि नाभा जी कृत 'भक्तमाल' के सूरदास सबधी छप्पय म और अन्य सम सामयिक महानुभावो के उल्लेखो से भी होती है।

सूरदास के जीवन-वृत्तात मे उनके ज माध होने की बात अत्यत सदिग्ध एव विवादास्पद रही है। इसके पक्ष एव विपक्ष मे बहुत-कुछ कहा और लिखा गया है, किंतु बात प्राय ज्यो की त्यो बनी हुई है। प्रबुद्ध व्यक्तियो तक की समझ मे यह नही आता कि एक जन्माध कवि भौतिक वस्तुओ एव प्राकृतिक पदार्थो के रूप-रगो और मानवीय हाव-भावो का यथार्थ, सूक्ष्म एव सर्वागपूण कथन कसे कर सकता है! हमने बिना किसी पूर्वग्रह के उन्मुक्त मन एव मस्तिष्क से इस विषय पर विचार किया है, और जन्माधता के विरुद्ध प्रमाण प्राप्त करने की भरसक चेष्टा की है। किंतु हमे ऐसा एक भी प्रमाण नही मिला, जो मिले वे सब इसके समर्थन मे थे। जो विद्वान सूरदास को जन्माध नही मानते हैं, उनकी मान्यता भी केवल अनुमान पर आधारित है। उनके पास जन्माधता के विरुध कोई प्रमाण नही है। ऐसी स्थिति मे अपने पूर्व ग्रंथो की भांति इसमे भी हमने सूरदास को जन्माध माना है, और इस सबध मे विस्तृत विवेचन किया है।

सूरदास का जीवन-वृत्त इस अर्थ मे बडा प्रेरणाप्रद है कि भौतिक साधनो के अभाव मे भी एक नेत्रहीन विकलाग व्यक्ति अपनी सतत साधना के बल पर ही कितना ऊंचा उठ सकता है। सच बात तो यह है कि जन्माध सूरदास का विलक्षण व्यक्तित्व और उनका महान् कृतित्व समस्त आंख वालो के लिए चुनौती बन गया है। वे ऐसे निष्ठावान भक्त, अनुपम साहित्य-सृष्टा और रससिद्ध गायक एव सगीतज्ञ थे, जिनके

जीवन–काल मे ही उनके व्यक्तित्व की प्रशसा और कृतित्व की सराहना की जाने लगी थी। ऐसा सौभाग्य विरले ही कृतिकार को प्राप्त होता है। उनके प्रशसको मे दीक्षा–गुरु श्री वल्लभाचार्य जी, उनके यशस्वी पुत्र श्री विट्ठलनाथ जी, मुगल सम्राट अकबर और तत्कालीन बहुसख्यक विद्वान, कवि, कलाकार एव सभ्रात राजपुरुष थे। उनके देहावसान के पश्चात् तो उनकी प्रशसा करने वालो की सख्या मे निरतर वृद्धि होती रही है। उनके साहित्य–सगीत समन्वित भक्ति–काव्य का उनके जीवन–काल मे लेकर अब तक बराबर गायन, वाचन एव पठन–पाठन किया जाता रहा है।

सूरदास कृष्णोपासक परम भक्त और साहित्य–सगीत के अनुपम साधक थे। किंतु साहित्य–सगीत उनकी साधना के लक्ष्य न होकर साधन मात्र थे। उनका विशाल गेय काव्य उपासना, भक्ति और सेवा–भावना की अभिव्यक्ति एव ससिद्धि के के साधन रूप मे निर्मित हुआ है। अभिप्राय यह है कि वे पहले भक्त थे, और फिर कवि एव गायक। उनका जीवन–वृत्त आरभ से अत तक भक्ति–भावना के अलौकिक रगो से रँगा हुआ और दिव्य सौरभ की सुगध से सुवासित था। वे ज्ञान–वैराग्य एव दीनता–विनय की पगडडियो मे हो कर पुष्टिमार्गीय 'पोषण' (भगवद् अनुग्रह) के राजमार्ग पर अग्रसर हुए थे। फिर वात्सल्य, सख्य और दाम्पत्य (माधुर्य) की मजिलो को पार करते हुए वे श्रीकृष्ण के युगल स्वरूप मे लीन होने के अपने अतिम लक्ष्य को प्राप्त कर सके थे।

आधुनिक काल मे भारतेन्दु बा० हरिश्चद्र से लेकर अब तक के बहुसख्यक साहित्य–समीक्षको एव शोधको ने सूरदास सबधी अध्ययन–अनुसधान तथा उनके भक्ति - काव्य की समालोचना के साथ ही साथ उनकी रचनाओ के सकलन के रूप मे जो विशाल वाड्मय प्रस्तुत किया है, उसे देख कर आत्म सतोष होता है। इस साहित्य–सपदा मे हिंदी साहित्य के पचासो इतिहासो के सूर सबधी विवरण, उनकी समीक्षा-समालोचना के कई सौ ग्रथ और उनसे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सबध रखने वाले शताधिक शोध - प्रबध है। किंतु उनके जीवन - वृत्त से सबधित एक भी स्वतत्र ग्र थ नहीं है। इस कमी की पूर्ति इस पुस्तक द्वारा करने की चेष्टा की गई है।

सूरदास का यह प्रथम स्वतत्र जीवन–वृत्त यथा सभव प्रामाणिक रूप से रोचक शैली मे लिखा गया है। इसके अत मे १ 'उपसहार' और ६ 'परिशिष्ट' भी है। सूर के प्रेमी पाठको के लिए इसे अर्पित करते हुए हमे अनुपम आतरिक सुख का अनुभव हो रहा है। आशा है, उन्हे यह उपयोगी ज्ञात होगा।

मीतल निवास डेम्पीयर नगर, मथुरा।
श्रावणी पूर्णिमा (रक्षा बधन) स० २०३८ — प्रभुदयाल मीतल
१५ अगस्त (स्वाधीनता दिवस) सन् १९८१

सूर-प्रशस्ति

किधौ सूर को सर लग्यौ, किधौ सूर की पीर ।
किधौ सर को पद सुन्यौ, बेध्यो सकल सरीर ।।

—तानसेन (स० १६२८ वि०)

●

उक्ति, चोज, अनुप्रास, बरन अस्थिति अति भारी ।
बचन प्रीति निरवाहु अर्थ, अद्भुत तुक धारी ।।
प्रतिबिंबित दिवि दिष्टि, हृदय हरि - लीला भासी ।
जनम करम गुन रूप, सबै रसना परकासी ।।
विमल बुद्धि गुन और की, जो यह गुन स्रवनन करै ।
सूर कवित सुनि कौन कवि, जो नहिं सिर - चालन करै ।।

—नाभा जी कृत 'भक्तमाल' (स० १६६० वि०)

●

सूर सूर हु ते अधिक, निसि - दिन करत प्रकास ।
जाकी मति हरि - चरन मे, ताको देत विलास ।।
सारद बैठो कंठ तिहिं, निसि दिन करै कलोल ।
हरिलीला रस पद कथत, नित नए सूर अमोल ।।

—प्राणनाथ कवि कृत 'अष्टसखामृत' (स० १६८० वि०)

●

तत्व - तत्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठी ।
बची - खुची कबिरा कही, और कही सब झूठी ।।

●

सूर सूर, तुलसी ससी, उडुगन केसवदास ।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ - तहँ करत प्रकास ।।

●

कविता - करता तीन है, तुलसी केसव सूर ।
कविता - खेती इन लुनी, सीला बिनत मजूर ।।

●

महात्मा सूरदास

[जन्म सं० १५३५ देहावसान सं० १६४०]

सूरदास

जीवन - वृत्तांत

प्रस्तावना—

भारतीय शिष्टाचार मे आत्म - प्रशसा को उचित नही माना गया है। इसलिए इस देश के मनीषियो ने आत्म - प्रशसा का तो सवथा परित्याग किया ही, उन्होने आत्म - कथन अथवा आत्म - परिचय के प्रस्तुतीकरण मे भी सकोच किया है। यही कारण है कि भारतबर्ष के अगणित महापुरुषो का जीवन - वृत्त सपूण रूप मे उपलब्ध नही है। विरक्त सतो और सवस्व - त्यागी हरिभक्तो के लिए आत्म - प्रशसा के साथ ही साथ आत्म - कथन भी एक प्रकार से निषिद्ध ही रहा है। फलत उनके जीवन - वृताात के बहुत कम सूत्र उपलब्ध होते है। महात्मा सूरदास के सबध मे भी ऐसी ही स्थिति है।

अत साक्ष्य की अस्पष्टता एव न्यूनता—सूरदास ससार - त्यागी विरक्त भक्त होने के कारण अपने भौतिक जीवन के प्रति उदासीन थे। अतएव उन्होने अपने सबध मे न तो अपनी रचनाओ मे स्पष्ट रूप से कुछ अधिक कहा है, और न अपने सहयोगियो एव अन्य भक्त जनो को ही कुछ विस्तार से बतलाया है। उनकी रचनाओ मे अत साक्ष्य के रूप मे जो थोडे से आत्म - कथन मिलते है, वे अस्पष्ट एव अपूण हैं। फलत वे उनके जीवन - वृत्तात के सम्यक् कथन मे बहुत कम सहायक होते है। सूरदास के समकालीन एव परवर्ती महानुभावो के बाह्य साक्ष्य भी पर्याप्त परिमाण मे प्राप्त नही हैं। जो कुछ उपलब्ध है, उनमे अन्य सूरदासो की जीवन-घटनाए भ्रमवश मिला दी गई है। इसलिए उनका उपयोग अत्यत सावधानी पूवक ही किया जा सकता है। उनके सूर सबधी विवरणो मे अप्रामाणिक घटनाओ का विकृत घोल-मेल हो गया है।

बाह्य साक्ष्य मे वल्लभीय वाङ्मय की महत्ता—जहाँ तक सूर विषयक प्रामाणिक बाह्य साक्ष्य का सबध है, उसमे वल्लभ सप्रदायी वाङ्मय का स्थान सैर्वोपरि है। सूरदास वल्लभ सप्रदाय मे दीक्षित थे, और उनके जीवन का अधिकाश भाग सर्वश्री वल्लभाचार्य जी और विट्ठलनाथ जी जैसे उक्त सप्रदाय के प्रारभिक आचार्यों एव उनके अनुयायी भक्त जनो के सम्पर्क मे बीता था। अतएव वल्लभ सप्रदायी वाङ्मय के सूर सबधी बाह्य साक्ष्य की प्रामाणिकता असदिग्ध है। इस प्रकार के बाह्य साक्ष्य का प्रधान स्रोत वल्लभ सप्रदायी वार्ताएँ हैं। किंतु इनमे अन्य भक्त महानुभावो की भाँति सूरदास का भी आद्योपात जीवन-वृत्त उपलब्ध नही है, वरन् उसकी जीवनी के कुछ थोडे से प्रसगो का ही उल्लेख किया गया है। फिर भी सूर के जीवन-वृत्तात के लिए वार्ताओ का बडा महत्व है। वार्ताओ के अतिरिक्त वल्लभ सप्रदायी विद्वानो के ग्रथो मे भी सूर-जीवनी के कुछ प्रामाणिक सूत्र मिलते है।

वल्लभ सप्रदायी वार्ता साहित्य मे श्री गोकुलनाथ जी (स १६०८—स १६९७) द्वारा कथित 'मूल' चौरासी वैष्णवन की वार्ता और श्री हरिराय जी (स १६४७—स १७७२) द्वारा सपादित 'मूल' तथा उनके द्वारा प्रस्तुत 'भावना वाली' चौरासी वैष्णवन की वार्ता प्रमुख है। श्री गोकुलनाथ जी महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के पौत्र और गो विट्ठलनाथ जी के चतुथ पुत्र थे। वे सूरदास के उत्तर काल मे विद्यमान थे। सूर-जीवनी क अनक प्रसगो से वे व्यक्तिगत रूप से परिचित थे। श्री हरिराय जी श्री गोकुलनाथ जी के प्रिय आत्मीय महानुभाव थे। उनका जन्म सूरदास के निधन के प्राय ७ वप पश्चात् हुआ था। वे बचपन से ही श्री गोकुलनाथ जी के सत्सग मे रहे थे, और उन्होने सूरदास के कुछ सगी-साथी हरि-भक्तो से भी सपक किया था। वे अनुसधान-प्रिय शोधक विद्वान थे। उन्होने सूर-चरित्र की अनेक बातो का अध्यवसाय पूवक अनुसधान किया, और उनका उल्लेख अपनी 'भाव' नामक उन टिप्पणियो मे किया था, जो उन्होने श्री गोकुलनाथ जी की मूल वार्ता मे जोडी थी। उन 'भाव' सज्ञक टिप्पणियो के कारण ही उनके द्वारा सपादित चौरासी वैष्णवन की वार्ता 'भावात्मक' अथवा 'भावना वाली' कहलाती है।

श्री गोकुलनाथ जी द्वारा कथित 'मूल' चौरासी वैष्णवन की वार्ता मे सूर-चरित्र का आरभ उस प्रसग से होता है, जब सूरदास 'गऊघाट' पर रहते थे, और उन्होने श्री वल्लभाचार्य जी से भेंट कर उनसे पुष्टि सप्रदाय की दीक्षा प्राप्त की थी। सूरदास के आरभिक जीवन के सबध मे उक्त वार्ता ग्रथ मे कुछ भी नही कहा गया है। इसका कारण यह नही है कि गोकुलनाथ जी उससे अपरिचित थे, वल्कि उसके कथन का प्रसग ही उपस्थित नही हुआ था। श्री हरिराय जी श्री गोकुलनाथ के पारिवारिक व्यक्ति होने के साथ ही साथ उनके साहित्यिक सहकारी भी थे। उन्होने श्री गोकुलनाथ जी द्वारा कथित वार्ताओ का सकलन एव सपादन करने के अतिरिक्त

उनके प्रासगिक कथनो की पूर्ति भी की थी। इसके लिए उन्होने अपने समय मे विद्यमान वयोवृद्धो की वैयक्तिक जानकारी, सप्रदाय मे प्रचलित अनुश्रुतियो औ अपने निजी अनुभवो एव अनुसधानो का समुचित उपयोग किया था। उन्होने सूरदास सबधी मूल वार्ता का सपादन किया और उसके कथन की पूर्ति स्वरूप सूरदास जी के आरभिक जीवन पर भी प्रकाश डाला। श्री हरिरायजी का वह महान् कृतित्व सूरदास जी की विद्यमानता के प्राय एक शताब्दी पश्चात् सम्पन्न हुआ था। अतएव उसम कुछ त्रुटियो का रह जाना असभव नही है।

सर्वश्री गोकुलनाथ जी एव हरिराय जी के अतिरिक्त वल्लभ सप्रदाय क अन्य विद्वानो की रचनाओ मे भी सूरदास सबधी कुछ महत्वपूण उल्लेख मिलने हैं। इस प्रकार की रचनाओ मे श्री विट्ठलनाथ जी के छठे पुत्र श्री यदुनाथ जी कृत सस्कृत ग्रथ 'वल्लभ दिग्विजय' (रचना काल स १६५८), श्री विट्ठलनाथ जी के पौत्र एव तृतीय गृहपति श्री द्वारकेश जी कृत ब्रजभाषा छप्पय (रचना काल स १६६० के लगभग), श्री गोकुलनाथ जी के समकालीन वृदावन निवासी प्राणनाथ कवि काव्योपनाम 'प्राणेश' कृत ब्रजभाषा काव्य 'अष्टसखामृत' (रचना काल स १६९०), श्री हरिराय जी के शिष्य जमुनादास द्वारा गुजराती भाषा मे रचित 'धोल' (रचना काल स १७२१), गो विट्ठलनाथ जी के वशज एव पचम गृहपति श्री द्वारकेश जी कृत वार्ता ग्रथ 'भाव सग्रह' (रचना काल स १७७५), वल्लभ सप्रदायी विद्वान श्रीनाथ भट्ट कृत सास्कृत रचना 'वष्णव वार्ता मणिमाला' (रचना काल स १८००) और गो विट्ठलनाथ जी के वशज श्री गोपिकालकार 'भट्टू जी' काव्योपनाम 'रसिकदास' कृत ब्रजभाषा काव्य 'वैष्णवाह्निक पद' (रचना काल स १९१०) विशेष रूप स उल्लेखनीय है। इन रचनाओ के सूर सबधी उल्लेखो का वल्लभ सप्रदायी वाड मय मे महत्वपूर्ण स्थान है।

अन्य बाह्य साक्ष्य—वल्लभ सप्रदायी वाड्मय के अतिरिक्त अन्य बहुसख्यक रचनाओ मे भी सूर-चरित्र की सामग्री मिलती है। किंतु इसमे से अधिकाश अप्रामाणिक है। कारण यह है कि इसमे सूरदास नामधारी अन्य भक्त जनो की जीवन घटनाएँ भी भ्रम वश मिला दी गई है। इस बेमेल मिश्रण ने सूरदास जी के जीवन-वृत्त को विकृत एव विवादास्पद बना दिया है। अतएव इस सामग्री की वही घटनाएँ स्वीकार करने योग्य है, जो वल्लभ सप्रदायी वाड्मय के अनुकूल है। ऐसी रचनाओ मे प्रामाणिकता की दृष्टि से रामोपासक भक्त कवि नाभा जी कृत 'भक्तमाल' (रचना काल स १६६०) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यद्यपि इसमे भी कई सूरदासो का उल्लेख है, तथापि उनके जीवन-वृत्तो का पृथक-पृथक कथन होने से उनमे घोल-मल नही हो पाया है।

सूरदास के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने वाले आधुनिक काल के आरभिक लेखको को वल्लभ सप्रदायी वाड्मय, विशेष कर श्री हरिरायजी की रचनाओ स कम

परिचय रहा है। उन्होने 'साहित्य-लहरी' के वश-परिचय वाले प्रक्षिप्त पद के विवरण को सूरदास के जीवन-वृत्तात मे जोड दिया है। किंतु उससे पहले उसकी प्रामाणिकता की भली भाति परीक्षा उन्होंने नही की। उसके अतिरिक्त उन्होने अन्य ग्रथो के सूर सबधी अप्रामाणिक उल्लेखो को भी सूरदास की जीवनी मे सम्मिलित कर दिया। इससे उनका सूरदास सबधी कथन त्रुटिपूण हो गया है।

आधुनिक हिंदी साहित्य के जनक भारतेन्दु हरिश्चद्र (स १९०७–१९४२) ने सव प्रथम सूरदास का जीवन - वृत्त लिखने की चेष्टा की थी। उन्होने इस सबध मे जो लेख लिखा वह 'कवि वचन सुधा जिल्द २, प्राचीन पुस्तकावली मे और श्री हरिश्चद्र-चद्रिका - खड ६ सख्या ५ (स १९३५) मे प्रकाशित हुआ था। बाद मे उसे बाकीपुर (बिहार) के खड्गविलास प्रेस से पुस्तक रूप मे निकाला गया। भारतेन्दु जी ने सूरदास के जीवन वृत्त का कथन सवश्री गोकुलनाथ जी एव हरिराय जी कृत 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', श्री नाभा जी कृत 'भक्तमाल' और अकबरी दरबार के मीरमुशी अबुलफजल कृत 'आईन-ए-अकबरी' के आधार पर किया था। किंतु 'साहित्य-लहरी' की एक सटीक प्रति मे दिये हुएँ किसी सूरजचद के वश-परिचय वाले पद को देख कर उन्होने अपने लेख मे तदनुसार परिवतन कर दिया। उस लेख मे उन्होने सूरदास के जन्म और देहावसान के आनुमानिक सवत् भी लिखे। उनका जन्म उन्होने स १५४० के लगभग माना, और देहावसान स १६२० के लगभग होने का अनुमान किया था[1]। भारतेन्दु के पश्चात् डा ग्रियसन, बाबू राधाकृष्ण दास, मुशी देवीप्रसाद और सवश्री मिश्रबधुओ ने भी इसे दोहराया।

मिश्रबधुओ के पश्चात् हिंदी के अनेक बिद्वानो ने सूर सबधी बहुसख्यक ग्रथो की रचना की है। इनमे सूरदास के जीवन-वृत्त विषयक ग्रथ भी हैं। हिंदी साहित्य के अनेक इतिहासो, सूर सबधी समीक्षा के बहुसख्यक ग्रथो और शताधिक शोध-प्रबधो मे भी प्रसग वश सूर के जीवन वृत्त का उल्लेख है। इन सब के विवरण प्राय मिश्र बंधुओ के कथन से मिलते हुए है। इनकी सबसे बडी त्रुटि यह है कि इनमे 'साहित्य-लहरी' के वश-परिचय वाले प्रक्षिप्त पद के विवरण के साथ 'आईन ए-अकबरी', 'मुशीयात अबुलफजल' और 'भक्तमाल' के अनुकरण पर रचित सामान्य स्तर की भक्त-गाथाओ के उन कथनो को भी स्वीकार कर लिया है, जिनमे अनेक सूरदासो की जीवन-घटनाओ का उल्लेख है। इन्हे अष्टछापी सूरदास के जीवन-वृत्त मे सम्मिलित करने से पहले उनकी प्रामाणिकता की परीक्षा नही की गई। फलत हिंदी साहित्य के पचासो इतिहासो, सूर सबधी समालोचना-समीक्षा के कई सौ ग्रथो और शताधिक शोध-प्रबधो

---

१ भारतेन्दु ग्रथावली (तीसरा खड, पृष्ठ ७१) मे प्रकाशित 'सूरदास जी' शीषक का लेख।

में वर्णित सूरदास के जीवन-वृत्तात की अनेक बाते अप्रामाणिक हो गई है। इन सब के सशोधन की अत्यत आवश्यकता है।

कालावधि का विभाजन—सूरदास के जीवन-वृत्तात की स्पष्टता एव क्रम-बद्धता के लिए इसे 'आरभिक जीवन' और 'उत्तर जावन' शीषक के दो भागो मे विभाजित करना उचित होगा। प्रथम भाग की अवधि प्राय ३२ वष की है, जो सूरदास के जन्म से लेकर उनके 'गऊघाट' पर निवास करने और श्री वल्लभाचाय जी से दीक्षा प्राप्त करने के काल तक की है। दूसरे भाग की अवधि प्राय ७३ वष की है जो वल्लभ सप्रदाय मे दीक्षित होने के उपरात गोबर्धन स्थित श्रीनाथ जी के मदिर मे कीतन करने से लेकर उनके देहावसान - काल तक की है। इनमे प्रथम भाग की घटनाएँ अपेक्षा-कृत अल्पज्ञात होने के कारण कुछ विवादास्पद है। किंतु दूसरे भाग की घटनाएँ सुविख्यात एव निर्विवाद है। हम उपलब्ध सामग्री के आधार पर सूरदास के जीवन-वृत्तात को प्रामाणिक रूप मे प्रस्तुत करने की चेष्टा करेगे।

आरभिक जीवन (स० १५३५ से स १५६७ तक) —

जन्म - स्थान, जाति तथा कुटुब - परिवार—श्री हरिराय जी द्वारा सपादित 'भावना वाली' चौरासी वैष्णवन की वार्ता के अतगत 'सूरदास की वार्ता' के आरभ मे ही बतलाया गया हे कि सूरदास का जन्म दिल्ली के निकटवर्ती 'सीही' नामक गाँव मे वहाँ के एक सारस्वत ब्राह्मण कुल मे हुआ था। 'वार्ता' का तत्सबधी उल्लेख इस प्रकार है, —

'सो सूरदास जी दिल्ली के पास चारि कोस उरे मे एक सीही गाम है, जहाँ राजा परीक्षित के बेटा जन्मेजय ने सप यज्ञ कियौ है। सो ता गाम मे एक सारस्वत ब्राह्मण के यहाँ प्रकटे[1]।'

श्री हरिराय जी के उक्त कथन की पुष्टि सूरदास जी के कुछ परवर्ती तथा गोकुलनाथ जी के समकालीन कवि वृदावन निवासी प्राणनाथ कृत 'अष्ट सखामृत' के इस उल्लेख से होती है,—

श्री बल्लभ प्रभु लाडिले, सीही सर जलजात।
सारसुती दुज तरु सुफल, सूर भगत विख्यात॥

श्री हरिराय जी के सेवक जमुनादास कृत गुजराती भाषा के 'धोल' मे भी इसी प्रकार का उल्लेख किया गया है,—

श्री सूरदास जी परम भक्त - शिरोमणि, आ रहेता ते तो **दिल्ली** सीही **गाम जो।**
प्रगटया एतो ब्रह्म सारस्वत कुल माँ, आ **नेत्रविहीने दरिद्र पिता ना धाम जो॥**

---

१ सूरदास की वार्ता (संपादक—प्रभुदयाल मीतल), पृष्ठ १–२
अष्टछाप (सपादक—कठमणि शास्त्री), पृष्ठ ५

यह सीही गाव वर्तमान हरियाणा राज्यातगत वल्लभगढ के निकट स्थित है। यहा पर सूरदास के जन्म लेने की अनुश्रुति प्रसिद्ध है, और यहाँ जन्मेजय द्वारा सर्प यज्ञ किये जाने की कथा भी प्रचलित है। यहाँ के एक विशिष्ट स्थान को सर्प-यज्ञ का स्थल बतलाया जाता है। सीही के सबध मे सर्वश्री हरिराय जी, प्राणनाथ कवि और जमुनादास के स्पष्ट उल्लेख होने पर भी कतिपय विद्वान् उस पर तर्क-वितर्क करते रहे है, जो अनावश्यक ही नही, असगत भी है। यही बात सूरदास की जाति के सबध मे भी कही जा सकती है। प्रामाणिक साक्ष्यो से उनका सारस्वत ब्राह्मण होना सिद्ध है।

सूरदास की वश-परपरा तथा उनके कुटुब-परिवार के सबध मे न तो श्री हरिराय जी ने प्रकाश डाला, और न किसी अन्य प्रामाणिक साधन से ही कुछ ज्ञात हो सका है। यहा तक कि उनके माता-पिता और भ्राताओ के नाम तक अज्ञात है। कुछ लेखको ने उनकी वश-परपरा का उल्लेख 'साहित्य लहरी के वश-परिचय वाले पद के आधार पर किया है, और कुछ ने उनके पिता का नाम रामदास लिखा है। किंतु ये सभी कथन अब अप्रामाणिक सिद्ध हो गये है।

जन्म-काल एव जन्म-दिवस—सूरदास के जन्म-काल के सबध मे श्री गोकुलनाथ जी के तत्वाधान मे रचित और श्री हरिराय जी द्वारा सपादित 'निज वार्ता' (रचना काल स १६९७) का उल्लेख है,—'**सो सूरदासजी जब श्री आचार्य जी महाप्रभुन कौ प्राकट्य भयौ है, तब इनकौ जन्म भयौ है।**' श्री आचार्य जी का प्राकट्य-काल स १५३५, वैशाख कृ० ११ निश्चित है। इस प्रकार सूरदास का जन्म-काल भी स १५३५ का वैशाख महीना हुआ। उनके जन्म-दिवस का उल्लेख पचम गृहपति द्वारकेश जी कृत 'भाव सग्रह' (स १८००) मे इस प्रकार मिलता है,—'**सो सूरदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभून तें दस दिन छोटे हते।**' अतएव श्री आचार्य जी के प्राकट्य दिवस (स १५३५ वैशाख कृ ११) मे १० दिन बढाने से सूरदास का जन्म-दिवस स १५३५, वैशाख शु ५ ज्ञात होता है। इसकी पुष्टि श्री वल्लभाचार्य जी के वशज श्री भट्टू जी काव्योपनाम 'रसिकदास' के कथन से भी होती है,—

> **प्रगटे भक्त-शिरोमणि-राय।**
> **माधव शुक्ला पचमि ऊपर, छटठ अधिक सुखदाय॥**
> **सवत पद्रहा पैंतिस बर्षे, कृष्ण-सखा प्रगटाय।**
> **'रसिकदास' मन आस पूरण ह्वै, सूरदास भुव आय॥**

इस प्रकार विविध प्रमाणो से सूरदास का जन्म-काल और जन्म-दिवस स १५३५ वैशाख शु० ५ निश्चित होता है। उसी दिन वल्लभ सप्रदाय के विभिन्न केन्द्रो मे सूरदास के जन्मोत्सव मनाये जाने की परपरा रही है। इधर अनेक वर्षों से देश-विदेश मे सर्वत्र उसी दिन सूरदास का जन्म दिवस मनाया जाता है।

अधत्व अथवा जन्माधता—सूरदास से सबधित अनुश्रुतियो एव किंवदन्तियो मे उनके अधत्व की बात सर्वाधिक प्रचलित है। लोक मे 'सूर' और 'नेत्रहीन' समानार्थक माने जाते है, अत 'सूरदास' शब्द अधे के लिए रूढ सा हो गया है। इस सबध मे परपरागत मान्यता तथा समकालीन एव परवर्ती बाह्य साक्ष्यो के साथ ही साथ सूरदास की रचनाओ के अत साक्ष्य से भी उनका नेत्रहीन होना प्रमाणित है। सूरसागर की हस्तलिखित एव मुद्रित प्रतियो मे ऐसे अनेक पद है, जिनमे सूरदास के अधत्व का उल्लेख है। यहा पर इस प्रकार के कतिपय पदो की आरभिक पक्तियाँ दी हैं,[1]—

१ इहै जिय जानिकै अध भव त्रास तें, 'सूर' कामी-कुटिल सरन आयौ ।५।
२ 'सूरदास' सो कहा निहोरौ, नैननि हू की हानि ।१३५।
३ 'सूर' कूर आधरौ, हौ द्वार परयौ गाऊ ।१६६।
४ 'सूरदास' अध अपराधी, सो काहै बिसरायौ ? ।१६०।
५ 'सूर' कहा कहै द्विविध आधरौ, बिना मोल कौ चेरौ ।
६ या झूठी माया के कारन, दुहुँ दृग अध भयौ ।२६१।

जन्माधता विषयक शका—सूरदास जी दृष्टिहीन थे, यह सवमान्य तथ्य है। इसमे किसी प्रकार की शका अथवा कोई विवाद नही है। शका एव विवाद की बात यह है कि वे जन्माध थे, अथवा बाद मे किसी रोग अथवा अन्य कारण से अधे हो गये थे। इस प्रकार की शका का कारण सूरदास जी के महान् कृतित्त्व की सपूणता एव सर्वांगीणता है। उन्होने अपनी रचनाओ मे दृश्य जगत् की भौतिक वस्तुओ एव प्राकृतिक पदार्थों के रूप-रगो, मानवीय हाव-भावो एव मुख-मुद्राओ, शारीरिक चेष्टाओ तथा ससार के अनत क्रिया - कलाप का यथाथ, सूक्ष्म एव सर्वांगपूर्ण कथन किया है। उनके द्वारा कथित रूपक अत्यत सागोपाग और उनकी उपमाएँ एव उत्प्रेक्षाएँ सवथा स्वाभाविक हैं। यह सब आखो से देखे बिना केवल कल्पना अथवा सुनी-सुनायी बातो के आधार पर प्रस्तुत किया जाना सामान्य रूप मे सभव नही मालूम होता। इसलिए कुतर्कशील ही नही, प्रबुद्ध व्यक्तियो का भी अनुमान रहा है कि सूरदास जन्माध नही होगे। उन्होने पर्याप्त समय तक जीवन एव जगत् की विभिन्न गति - विधियो को बडी तल्लीनता एव सूक्ष्मता पूवक अपनी आखो से देखा होगा। उसके उपरात व किसी समय किसी कारण से दृष्टिहीन हो गये होगे। किंतु यह अनुमान मात्र है, इसमे वास्तविकता लेश मात्र भी नही है। वस्तुत सूरदास जी अतर्दृष्टि सपन्न महात्मा थे। उन्हे भगवद् - अनुग्रह से दिव्य दृष्टि प्राप्त थी, जिससे वे जन्माध होते हुए भी जीवन और जगत् की समस्त गति - विधियो को देखने और उनका यथार्थ एव यथावत् कथन करने मे पूर्णयता समथ थे। इसका कारण उन्होने स्पष्ट रूप से भगवान की

---

[1] **जिन पदो मे सख्या का उल्लेख है, वे ना प्र सभा द्वारा प्रकाशित सूरसागर के हैं। सख्या रहित पद हस्तलिखित प्रतियो के है।**

कृपा के महत्व को बतलाया है। उन्होंने कहा है—'भगवान से क्या नहीं हो सकता ? उनकी कृपा से गूँगा बोल सकता है, लूला - लगडा व्यक्ति पहाड को लाघ सकता है, और निपट अधा सब कुछ देख सकता है। उनके शब्द है —

१ हरि जू तुमतें कहा न होइ ?

बोलै गुग, पगु गिरि लघै, अरु आवै अधा जग जोइ। ६५।

२ जाकी कृपा पगु गिरि लघै अधे को सब कछु दरसाय। १।

उपयुक्त कथन से ज्ञात होता है कि भगवद् - कृपा प्राप्त भक्तजन एव ब्रह्मज्ञानी महानुभाव, चाहे चमचक्षु रहित ही क्यो न हो, दृश्य एव अदश्य जगत् की समस्त वस्तुओ एव गति - विधियो को यथाथ रूप मे देखने और उनका यथावत् कथन करने मे सवथा समथ होते है। महाभारत के सजय और भागवत के शुकदेव जी इसके पुरातन प्रमाण हैं।

महाभारत से ज्ञात होता है कि व्यास जी से दिव्य दृष्टि प्राप्त होने पर सजय ने कुरुक्षेत्र से दूर होते हुए भी धृतराष्ट्र को महाभारत युद्ध की समस्त घटनाओ को यथाथ रूप मे बतलाया था। शुकदेव जी बाल ब्रह्मचारी थे। उन्हे भोग - विलासादि का लेश मात्र भी व्यक्तिगत अनुभव नही था। फिर भी वे श्रीकृष्ण की रासादि मधुर लीलाओ का जैसा सरस वणन कर सके है, वैसा कोई सामान्य अनुभवी रचनाकार कदापि नही कर सकता। सूरदास इसी प्रकार अपने विशिष्ट काव्य का सृजन कर सके है।

सूरदास का काव्य वशिष्ट्य उनकी विद्यमानता के काल मे चाहे आधुनिक युग की भाँति शका का विषय न रहा हो, किंतु उत्सुकता एव विस्मय का अवश्य था। इससे सबधित दो प्रसग 'सूरदास की वार्ता' मे मिलते है। पहला प्रसग सूर - अकबर भेट का है, और दूसरा श्री नवनीतप्रिय जी के कीतन का है। वार्ता' से ज्ञात होता है, जब सूरदास की सम्राट अकबर से भेट हुई थी, तब उन्होने सम्राट की इच्छानुसार कुछ पदो का गायन किया था। उनमे से एक पद का कुछ अश इस प्रकार है,—

नाहिन रह्यौ मन मे ठौर।

नदनदन अछत, कैसे आनियै उर और ?

स्याम गात सरोज आनन, ललित अति मृदु हास।

'सूर' ऐसे दरस को, ये मरत लोचन प्यास।।

इस पद को सुन कर अकबर ने सूरदास से पूछा, सूरदास जी, तुम्हारे नेत्र तो है नही, फिर ये प्यासे कैसे मरते है ?' सूरदास जानते थे कि उनकी दिव्य दृष्टि के रहस्य को सम्राट नही समझ सकेगा, अत उन्होने कोई उत्तर नही दिया। दूसरा प्रसग सूरदास द्वारा गोकुल मे ठाकुर श्री नवनीतप्रिय जी के कीर्तन करने के समय का है। ठाकुर जी की झाकियो मे उनका जैसा शृगार किया जाता था, अधे सूरदास

उसका ठीक वैमा ही कथन अपने पद गान मे कर देते थे। वह बात गोस्वामी बालको को बडी आश्चर्यजनक जान पडती थी। उन्होने कौतूहल वश सरदास के दृष्टि - वैशिष्ट्य की परीक्षा करने का उपक्रम किया। उसके लिए उन्हान ठाकुर जी की प्रात कालीन झाकी के नियमानुसार वस्त्राभूषण धारण न करा कर केवल मोतियो के दो - एक आभूपण पहिना दिये, वस्त्र एक भी नही पहिनाया। फिर उन्होने सूरदास से कीतन करने को कहा। उनका अनुमान था कि ठाकुर जी के उस असाधारण वेश का यथावत् वणन सूरदास न कर सकेंगे। किंतु उन्हे बडा विस्मय हुआ, जब सूरदास ने गाया,—

'देखे री, हरि नगम नगा।
जल - सुत भूषन अ ग विराजत, वसनहीन छवि उठत तरगा ।।

जब उस घटना की बात गो विटठलनाथ जी को ज्ञात हुई, तब उन्होने बालको को समझाते हुए कहा, —'सूरदास जी परम भगवदीय है। ठाकुर जी के अनुग्रह से उन्हे दिव्य दष्टि प्राप्त है। अतएव चम चक्षुओ के बिना भी वे सब कुछ देखने मे समथ हैं। इस सबध मे उनकी परीक्षा करना उचित नहो है।'

हठ योग द्वारा दिव्य दृष्टि की प्राप्ति—सूरदास जैसे परम भक्त महात्मा को दिव्य दृष्टि भगवत्कृपा से प्राप्त हुई थी, किंतु उस काल के हठयोगी योग-क्रिया से भी उसे प्राप्त कर लेते थे। हठयोग मे षट कर्मों का विधान है। उनमे से पचम कम का नाम 'त्राटक' है। उसके विषय मे कहा गया है, –'जब तक नेत्रो मे अश्रुपात न होने लगे तब तक निमेष उन्मेष किये बिना किसी सूक्ष्म वस्तु पर एकटक दृष्टि जमाए रखना 'त्राटक कहलाता है। इस त्राटक योग के अभ्यास से शामवी मुद्रा को सहायता मिलती है। उससे नेत्र रोग ही नष्ट नही होते, दिव्य दृष्टि भी प्राप्त हो जाती है[1]। सूरदास के समय मे हठ योग का बडा प्रचार था, उसमे निष्णात योगी दिव्य दृष्टि सहित नाना प्रकार की अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कर लेते थे। इससे ज्ञात होता है कि दिव्य दृष्टि हठयोग की साधना से भी प्राप्त की जा सकती थी। किंतु सूरदास हठयोगी नही थे, परम भक्त थे। उन्हे वह अलौकिक शक्ति पूव सस्कार एव भगवत-अनुग्रह से ही उपलब्ध हुई थी।

---

१ **निमेषो मेषको त्यक्त्वा, सूक्ष्म लक्ष्य निरीक्षयेत्।**
यावदश्रूणि मुञ्चति, त्राटक प्रोच्यते बुधै ।।
एव मायो सयोगेन शम्भा जायते ध्रुवम्।
नेत्ररोग विनश्यन्ति, दिव्य दृष्टि प्रजायते ।।
—आख और कविगण, पृष्ठ १८

आधुनिक अध्येताओ की भ्रमात्मक मान्यता—आधुनिक काल मे जब सूर-साहित्य का विस्तृत अध्ययन किया गया, तब उसकी अनुपम उत्कृष्टता ने सभी अध्येताओ को बडा प्रभावित किया था। वे मानने लगे कि इस प्रकार के सर्वांगपूर्ण काव्य का सृजन कोई जन्मांध कवि नही कर सकता। अतएव सूरदास जी जन्म से अंधे न होकर बाद मे अपनी वृद्धावस्था मे दृष्टिहीन हुए होंगे। इस प्रकार की मान्यता सूर-साहित्य के जिन आरंभिक अध्येताओ की हुई, उनमे सर्वश्री मिश्रबंधु[1], डा श्यामसुंदर दास[2], डा बेनी प्रसाद[3], श्री नलिनीमोहन सान्याल[4], डा हजारीप्रसाद द्विवेदी[5] डा ब्रजेश्वर वर्मा[6] और डा रामरतन भटनागर[7] के नाम उल्लेखनीय हैं। डा दीनदयालु गुप्त ने भी सूरदास को जन्मांध स्वीकार नही किया, किंतु उन्होने अनुमान किया कि वे अपनी बाल्यावस्था मे अंधे हुए होंगे[8]। यहाँ यह कहा जा सकता है कि सूरदास के अनुपम काव्य महत्व के कारण उन्हे पर्याप्त समय तक सासारिक अनुभव प्राप्त करने के उपरात वृद्धावस्था मे दृष्टिहीन बतलाना तो कुछ अर्थ भी रखता है, किंतु डा गुप्त का यह कथन कि सूरदास अपनी बाल्यावस्था मे दृष्टिहीन हुए होंगे, सर्वथा निरर्थक है।

सूर साहित्य के प्रारंभिक आलोचको मे से कुछ की मान्यता थी कि सूरदास अपनी युवावस्था मे किसी सुंदरी युवती पर आसक्त हो गये थे। किंतु जब उन्हे अपने दुष्कृत्य पर पश्चाताप हुआ, तब प्रायश्चित्त मे उन्होने अपनी आँखे फोड ली थी। वह घटना ऐसी मर्मस्पर्शी थी कि बाद के कई प्रबुद्ध व्यक्ति उसे सूरदास के जीवन-वृत्त मे जोडने के प्रलोभन को नही छोड सके। इसके लिए उन्होने उसकी प्रामाणिकता का परीक्षण करने की भी आवश्यकता नही समझी। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे विशिष्ट महानुभाव ने इसी घटना पर आधारित 'सूरदासेर प्रार्थना' शीर्षक की एक भावुकतापूर्ण कविता लिखी और डा हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे वरिष्ठ विद्वान ने उसे अपनी ललित भाषा शैली मे सूरदास की 'वास्तविक जीवनी' बतलाया[9]। किंतु अब यह सिद्ध हो गया है कि उक्त घटना का संबंध अष्टछापी सूरदास से कदापि नही है, वरन् उन बिल्वमंगल सूरदास से है जो अष्टछापी सूरदास के पूर्ववर्ती थे।

---

१ हिंदी नव रत्न पृष्ठ २३०
२ हिंदी साहित्य, पृष्ठ १८५
३ संक्षिप्त सूरसागर, पृष्ठ ६
४ भक्त-शिरोमणि सूरदास, पृष्ठ १०
५ हिंदी साहित्य, पृष्ठ १७५
६ सूरदास, पृष्ठ ३१
७ सूर साहित्य की भूमिका, पृष्ठ १३
८ अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय पृष्ठ २०२
९ सूर साहित्य, पृष्ठ १५७—१५९

आधुनिक काल के कुछ विद्वानो का कथन है कि सूरदास अंधे न होकर 'कान थे ! उनकी एक आँख थी, किंतु उसमे भी कुछ खराबी थी । इसके प्रमाण मे वे सूरदास के जिस पद को प्रस्तुत करते है, उसका कुछ अश इस प्रकार है —

अब हौं माया-हाथ बिकानौ ।
'सूरदास' की एक आख है, ताहू मे कछु कानौं ।। ४७ ।।

इसके सबध म पहली वात यह है कि जब एक आख वाला व्यक्ति ही काना कहलाता है तब उस आख मे 'कछु कानौ' कहना निरथक एव अनावश्यक है । सूरदास का एक दूसरा पद भी इस सबध मे विचारणीय है । उसका कुछ अश यहा प्रस्तुत है,—

आछौ गात अकारथ गार्‌यौ ।
निसि-दिन विषय-विलासनि विलसत, फूटि गई तव चार्‌यौ ।
तातैं कहत दयाल देवमनि, काहै 'सूर' विसार्‌यौ ।। १०१ ।।

यदि प्रथम पद के कारण सूरदास को एक आँख का माना जाता है, तब दूसरे पद के कारण उन्हे चार आखो वाला मानना होगा, जो नितात हास्यास्पद है ! वस्तुत इन दोनो पदो के इन कथनो मे मुहावरे है, जो वाच्यार्थ की अपक्षा लक्ष्याथ के सूचक है । इस प्रकार पहले पद का वास्तविक अथ होगा,— 'सूरदास कहते है, मेरे बाह्य नेत्र (चम चक्षु) तो है ही नही, भगवद्-कृपा से अत दृष्टि (ज्ञान चक्षु) प्राप्त है, किंतु उसे माया ने विकृत कर दिया है ।' दूसरे पद का अथ होगा,— 'अच्छी-भली काया (मानव योनि) व्यय नष्ट कर दी । रात-दिन विषयो मे फँसे रहने से दोनो बाहरी नेत्रो (चम चक्षुओ) के साथ ही साथ दोनो भीतरी नेत्रो (ज्ञान चक्षुओ) को भी खो दिया !' इस प्रकार ठीक अर्थ करने से स्पष्ट होता है कि उक्त पदो को सूरदास के नेत्र विषयक अन साक्ष्य समझना भूल है । इससे सबधित जो प्रामाणिक अत साक्ष्य एव बाह्य साक्ष्य उपलब्ध है, उनका उल्लेख यहा किया जाता है ।

जन्माधता के अत साक्ष्य—चू कि सूरदास ने अपने सबध मे स्पष्ट रूप से प्राय कुछ नही कहा, अत उनकी रचनाओ मे जन्माधता विषयक अन साक्ष्य भी अधिक नही मिलते हे । फिर भी सूर-पदावली की कुछ प्रामाणिक प्रतियो मे ऐसे कतिपय पद है, जिनमे उनकी जन्माधता का स्पष्ट कथन किया गया है[1] । इस प्रकार के तीन पदो के कुछ अश यहाँ दिये जाते हैं,—

१ नाथ ! मोहि अब की बेरि उबारो ।
करमहीन जनम को अधौ, मोतै कौन नकारो ।।

२ किन तेरौ गोविंद नाम धरयौ ?
'सूर' की विरियाँ निठुर होइ बैठे जनम अध कर्‌यौ ।।

३ हरि दिन सकट मे को का को !
रह्यौ जात एक पतित, जनम कौ आधरो, 'सूर' सदा कौ ।।

---

१ देखिये हमारा ग्रथ 'सूर-निर्णय, पृष्ठ ७७–७९

पूर्वोक्त तीनो पद सूर पदावली की हस्त लिखित प्रतियो मे मिलते हैं। ना प्र सभा के सूरसागर मे सूरदास के अन्य अनेक पदो की भाति इनका भी उल्लेख नही हुआ है, किंतु अन्यत्र इनका प्रकाशन किया जा चुका है। प्रथम पद नव जीवन कार्यालय, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित 'भजनावली' (पृष्ठ १०९) मे, और श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बबई द्वारा प्रकाशित 'राग रत्नाकर' (पृष्ठ २०३) मे उपलब्ध है। द्वितीय पद जिन हस्त लिखित प्रतियो मे है, उनमे से एक का लिपि काल स १८०० के लगभग है, और दूसरी का स १८६६। यह पद भी 'राग रत्नाकर' (पृष्ठ २०२) मे मिलता है, किंतु इसमे पाठ भेद है। इन पदो मे 'नाथ', 'गोविद' और 'हरि' जैसे साथक शब्द हैं, जिनका प्रयोग सूरदास सदृश शब्द-कोश के धनी महाकवि ही कर सके हैं।

जन्माधता के बहि साक्ष्य—सूरदास की जन्माधता के बहि साक्ष्य अत्यधिक सख्या मे उपलब्ध है। इनमे वल्लभ सप्रदायी 'वार्ता' साहित्य, जो सूरदास जी के जीवन-वृत्तात का आदिम स्रोत है, सव प्रथम उल्लेखनीय है। इस साहित्य के अतगत श्री गोकुलनाथ जी द्वारा कथित 'मूल' चौरासी बैष्णवन की वार्ता, और श्री हरिराय जी कृत भावात्मक' चौरासी वैष्णवन की वार्ता प्रमुख है। 'मूल' चौरासी वार्ता मे सूरदास जी के आरभिक जीवन का कोई प्रसग नही है, अतएव इसमे उनकी जन्माधता का भी उल्लेख नही किया गया है। इस वार्ता ग्रथ का आरभ सूरद स और वल्लभाचार्य की भेंट के प्रसग से हुआ है। इसमे लिखा है जब सूरदास श्री वल्लभाचाय जी से भेंट करने गये, तब उन्हे देख कर आचाय जी ने कहा,—'सूर! आओ बैठो।' यहा पर उन्हे 'सूर' नाम से सबोधित किया जाना ही उनकी जन्माधता का सूचक है। श्री हरिराय जी कृत 'भाव प्रकाश' मे 'अधे' और 'सूर' मे अतर किया गया है। इसमे लिखा है **"ज मे पाछे नेत्र जाय तिनको 'आँधरा' कहिये, 'सूर' न कहिये, और ये तो 'सूर' है**[1]।" इस प्रकार श्री हरिराय जी ने जन्माध को 'सूर और बाद मे दृष्टिहीन होने वाले को 'आँधरा' बतलाया है।

मूल चौरासी वार्ता के द्वितीय प्रसग मे लिखा है, जब श्री वल्लभाचार्य जी सूरदास जी को अपने साथ लेकर गोकुल गये, तब उन्होने उनसे कहा,- **सूर! श्री गोकुल को दरसन करो। तब सूरदास जी श्रीगोकुल कौं दडवत किए**[2]।' यहाँ पुन सूरदास जी को 'सूर' (जन्माध) कहा गया है, और आचाय जी ने उनसे गोकुल का दर्शन करने के लिए इस प्रकार कहा, जैसे कोई नेत्रवाला व्यक्ति नेत्रहीन से कहता है।

श्री हरिराय जी ने श्री गोकुलनाथ जी द्वारा कथित 'मूल' चौरासी वार्ता का सपादन किया था। मूल वार्ता मे जो प्रसग छूटे हुए थे अथवा अधूरे थे, उनकी पूर्ति

---

१ 'अष्टछाप' (सपादक—कठमणि शास्त्री,), पृष्ठ ५

२ वही, पृष्ठ ५

उन्होने 'भाव प्रकाश' द्वारा की थी। फलत उनके द्वारा सपादित 'भावात्मक' चौरासी वैष्णवन की वार्ता मे सूरदास जी के आरभिक जीवन का भी उल्लेख मिलता है। उसमे लिखा है— **सूरदास जी के जन्मत ही सो नेत्र नाहीं हैं। ओर नेत्रन को आकार गढेला कछू नाँही, ऊपर भौंह मात्र हैं। सो या भाति सो सूरदास जी कौ स्वरूप है[1]।'** इसमे हरिराय जी ने सूरदास जी को जन्माध ही नही, वरन् ऐसा सिलपट अधा बतलाया है, जिसके नेत्रो के आकार तक नही थे। यहाँ यह बात ध्यान मे रखने योग्य है कि श्री गोकुलनाथ जी सूरदास जी के समकालीन थे, और वे पर्याप्त समय तक उनके सपर्क मे रहे थे। श्री हरिराय जी का जन्म सूरदास जी के देहावसान के केवल सात वर्ष पश्चात् हुआ था, और वे श्री गोकुलनाथ जी तथा सूरदास जी के अन्य समकालीन व्यक्तियो के साथ अनेक वर्षो तक रहे थे। अतएव उन्होने जो कुछ लिखा है, वह सूरदास के सगी-साथियो से प्राप्त जानकारी पर आधारित होने के कारण पूर्णतया प्रामाणिक है।

सूरदास सबधी बाह्य साक्ष्य मे 'वार्ता' साहित्य के अतिरिक्त प्राणनाथ कवि कृत 'अष्टसखामृत', मठेश श्रीनाथ भट्ट कृत 'सस्कृत वार्ता मणिमाला', नाभाजी कृत 'भक्तमाल' राजा रघुराज सिंह कृत 'राम रसिकावली' और मियासिंह कृत 'भक्त विनोद' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनमे सूरदास जी की जन्माधता के जो उल्लेख मिलते है, वे यहा क्रमश दिये जाते हैं,—

प्राणनाथ कबि कृत 'अष्टसखामृत' (स १६६०) मे सूरदास को अतर्दृष्टि सम्पन्न 'साँचे सूर' कहा गया है, जो श्री हरिराय के कथनानुसार सूरदास की जन्माधता का सूचक है। उक्त उल्लेख इस प्रकार है,—

बाहर नैन विहीन सो, भीतर नैन विसाल।
तिन्हे न जग कछु देखिबो, लखि हरि रूप निहाल॥
बाहर-अतर सकल तम, करत ताहि छन दूर।
हरि - पद - मारग लखि परत, यातें साचे सूर॥

मठेश श्रीनाथ भट्ट कृत 'सस्कृत वार्ता मणिमाला' (स १८००) मे सूरदास जी को जन्माध और महान् प्रज्ञाचक्षु बतलाया गया है,—

'जन्माधो वै महाप्रज्ञाचक्षु सुकृतिसत्तम'

रामोपासक सत नाभा जी कृत 'भक्तमाल' (स १६६०) के छप्पय स ७३ मे सूरदास को ऐसे दिव्य दृष्टि सम्पन्न महात्मा बतलाया गया है, जिनके हृदय मे हरि-लीला का आभास होता रहता था। उनके इस कथन से सूरदास की जन्माधता की व्यजना होती है। उक्त छप्पय का कुछ अश इस प्रकार है,—

---

१ श्री हरिराय जी कृत 'अष्ट सखान की वार्ता' (द्वारकादास परीख) पृष्ठ २—३

प्रतिबिंबित दिविदृष्टि, हृदै हरि लीला भासी।
जनम - करम - गुन - रूप, सबै रसना परकासी ॥७३॥

रीवाँ नरेश रघुराजसिंह कृत राम रसिकावली' और मियासिह कृत भक्त विनोद' मे सूरदास को स्पष्ट रूप मे जन्म से ही नेत्रविहीन बतलाया गया है। उनके तत्सबधी उल्लेख इस प्रकार हैं,—

जन्मत तें हैं नैन-विहीना। दिव्य दृष्टि देखहिं सुख भीना॥ (राम रसिकावली)
जनम अंध दृग ज्योति-विहीना। जननि-जनक कछु हरष न कीना॥ (भक्त विनोद)

जन्माधता की मान्यता —सूरदास की जन्माधता के समथन मे जब हमारे ग्रथ अष्टछाप-परिचय' (रचना–स २००४) तथा 'सूर-निणय' (रचना–स २००६) मे विस्तार पूर्वक लिखा गया, और उनमे जिन प्रमाणो एव युक्तियो को प्रस्तुत किया गया, उनसे सूर-साहित्य के अनेक विद्वान अत्यत प्रभावित हुए थे। फलत जन्माधता के विरोध का स्वर मद पड गया, और बाद मे प्रकाशित होने वाले सूर सबधी ग्रथो मे जन्माधता को मान्यता दी जाने लगी। सूर-साहित्य के वरिष्ठ विद्वान डा मुशीराम शर्मा पहले ही इसके समथन मे अपना अभिमत व्यक्त कर चुके थे[1]। जिन सुप्रसिद्ध विद्वानो की परवर्ती रचनाओ मे स्पष्ट अथवा अस्पष्ट शब्दो में जन्माधता के पक्ष मे मत प्रकट किया गया था, उनमे श्री नददुलारे बाजपेयी[2], डा हरवशलाल शर्मा[3], डा प्रेमनारायण टडन[4], डा गोवधननाथ शुक्ल[5] और प सीताराम चतुर्वेदी[6] के नाम उल्लेखनीय है।

सूरदास के व्यक्तित्व का चिंतन-मनन करते समय हम बिना किसी पूवग्रह के इस बात का निरतर प्रयत्न करते रहे है कि यदि हमे उनकी जन्माधता के विरुद्ध कोई विश्वसनीय प्रमाण मिल जाय तो हम अपनी पुरानी मान्यता मे सशोधन कर दे। किंतु आज तक हमे ऐसा एक भी प्रमाण प्राप्त नही हो सका। विगत वर्षो मे सूरदास विषयक व्यापक अध्ययन–अनुसधान हुआ है, जिसके फलस्वरूप समालोचना समीक्षा एव शोध-प्रबधो के रूप मे विपुल साहित्य निर्मित किया जा चुका है। किंतु इस विशाल ग्रथ राशि मे भी सूर की जन्माधता के विरुद्ध कोई प्रामाणिक तथ्य प्रस्तुत नही किया गया।

---

१ सूर-सौरभ, प्रथम भाग, पृष्ठ २४ २ महाकवि सूरदास, पृष्ठ ७२
३ सूर और उनका साहित्य, पृष्ठ २६ ४ सूर की भाषा, पृष्ठ ५२
५ सूर-ग्रथावली (प्रथम खड) का आरभिक लेख —'भक्त कवि सूरदास,' पृष्ठ १२
६ महाकवि सूरदास और उनकी प्रतिभा, पृष्ठ ४

वास्तविक बात यह है कि सूरदास की जन्माधता के विरुद्ध जो कुछ कहा गया है, अथवा कहा जाता है, वह सब कोरे अनुमान पर आधारित है। इस सबध मे जो तर्क दिये जाते हैं, वे तभी स्वीकृत हो सकते है, जब हम सूरदास को सामान्य ससारी व्यक्ति और साधारण रचनाकार मान लें। किंतु वे तो महान् सत, परम भक्त, असाधारण साहित्य-सृष्टा अनुपम कीतनकार और सर्वोच्च श्रेणी के ब्रह्मविद् महात्मा थे। उन जैसे सिद्ध कोटि के महापुरुषो को जब ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है, तब ब्रह्म स्वरूप इस जगत् की कोई बात उनसे छिपी नही रहती है। वे क्रातदर्शी एव स्वय प्रकाश हो जाते है। जीवन एव जगत् के बहुविध कार्य कलाप को निरखने-परखने के लिए उन्हे किसी इद्रिय-विशेष की आवश्यकता नहीं रह जाती। सूरदास जी इसी प्रकार के क्रातदर्शी एव दिव्यदृष्टि सपन्न महात्मा थे। अपनी अनुपम भक्ति-साधना के फलस्वरूप भगवत्कृपा मे वे जीवन और जगत् की उन समस्त वस्तुओ तथा उनकी गति-विधियो को जन्माध होते हुए भी देखने मे समथ थे, जिन्हे अनेक प्रतिभाशाली साहित्यकार आख रहते हुए भी नही देख पाते है।

भौतिक समाधान— सूरदास की जन्माधता के समर्थन मे अभी तक जो कुछ कहा गया है, अत साक्ष्य एव बाह्य साक्ष्य सबधी जो प्रमाण दिये गये है, और भगवद्-अनुग्रह द्वारा प्राप्त अतदृष्टि की जैसी महत्ता बतलाई जा चुकी है, उससे धर्मप्राण श्रद्धालु व्यक्तियो के साथ ही साथ आस्थावान प्रबुद्ध जनो का समाधान हो सकता है। किंतु नवयुग से आक्रात उन भौतिकतावादी तार्किको को सतुष्ट नही किया जा सकता, जो न विश्वसनीय अनुश्रुतियो एव प्रामाणिक उल्लेखो को मानते है, और न भगवद् अनुग्रह द्वारा प्राप्त अतदृष्टि की सभावना को ही स्वीकार करते है।

नवयुग के अनास्थावान तार्किको की सतुष्टि वस्तुत भौतिक समाधान से ही की जा सकती है। वे सूरदास की जन्माधता पर तभी विश्वास कर सकते है, जब आधुनिक विज्ञान रेडियो-टेलीविजन-राडार की भाँति अतर्दृष्टि अथवा दिव्यदृष्टि को भी सर्वसाधारण के लिए सुलभ बना दे। वसे इस युग मे भी ऐसी विचित्र बाते होती रहती है, जो न तर्क समत है, न बुद्धिगम्य हैं और न जिनका उत्तर विज्ञानवेत्ता ही दे पाते है। जैसे काच पत्थर लोहा फौलाद खाने वाले व्यक्ति अब भी मौजूद हैं। ८-८, १० १० अको के जोडादि क्षण भर मे लगाने वाले और बहुसख्यक प्रश्नो का एक साथ उत्तर देने वाले व्यक्ति भी विद्यमान हैं। ऐसे जन्माध व्यक्ति भी है जिन्होने बचपन मे ही इतने अधिक ग्रथो का अध्ययन कर उन्हे कठस्थ कर लिया है, जितनो को बडे बडे मेधावी विद्वान अपने समस्त जीवन मे भी नही कर पाते है। क्या इसे दैवी देन अथवा भगवत्-कृपा नही कहा जा सकता है? फिर सूरदास की जन्माधता और उनकी दिव्य दृष्टि के प्रति ही अविश्वास क्यो किया जाता है?

भगवत्कृपा एव दैवी देन की अलौकिक बातो के प्रति जिन्हे विश्वास नही होता है, उनके समाधान के लिए आधुनिक काल के कुछ ऐसे व्यक्तियो के उदाहरण दिए जा सकते है जिन्हे आँखो के बजाय शरीर के अन्य अगो से देखने की अद्भुत शक्ति प्राप्त थी। कई वष पहले कतिपय समाचार पत्रो में प्रकाशित हुआ था कि यूरोप और अमरीका में कुछ ऐसी महिलाएँ है, जो अपनी आँखो के साथ-साथ अपने हाथो की अँगुलियो से भी देखती है। ११ अगस्त सन् १९७६ के दैनिक नवभारत टाइम्स' मे जापान की एक लडकी सयूरी तनाका का वृत्तात छपा था जो अपनी आखो के साथ साथ नाक से भी देखती थी। वह आखे वद कर नाक के सहारे उन सभी कार्यो को कर सकती थी जिन्हे आखो से देख कर ही किया जाता है। प्रकृति ने उसे जो अनोखा उपहार दिया, उसकी परीक्षा जापानी डाक्टरो एव वैज्ञानिको ने भली भाति की थी। रोजा कुलेशोवा नामक एक ऐसी रूसी लडकी का समाचार साप्ताहिक हिन्दुस्तान' दिनाक १८ जुलाई सन् १९७८ के अक मे प्रकाशित हुआ था जो अपने सीधे हाथ की तीसरी और चौथी उँगलियो से देखने की अद्भुत शक्ति रखती थी। वह आखो पर पट्टी बाध कर उन उगुलियो के स्पश से ही सब कुछ देख लेती थी। वैज्ञानिको ने अनेक प्रयोग एव परीक्षण किये, किंतु सब मे रोजा की वह अद्भुत शक्ति खरी सिद्ध हुई।

जापान-रूस आदि देशो की इन लडकियो के उदाहरण से उन भौतिकावादी एव बुद्धिजीवी तार्किको का समाधान हो जाना चाहिए जो सूरदास जी की जन्माधता में सदेह करते है अथवा उनके दिव्य दृष्टि सम्पन्न होने के प्रति शकाशील है। यदि उन्हे भगवत्कृपा मे विश्वास नही है तो वे यह मान कर सतुष्ट हो सकते है कि प्रकृति ने सूरदास जी को ऐसी शक्ति प्रदान की थी जिससे वे जन्माँध होते हुए भी अपनी किसी अन्य इद्रिय द्वारा देख सकते थे। उस विलक्षण शक्ति के कारण ही उन्होने जीवन एव जगत् की विभिन्न गति-विधियो एव बहुविध क्रिया कलाप को भली भाँति देखा था और तदनुसार उनका सागोपाग कथन किया था।

निष्कष—सूरदास के कृतित्व की विशिष्टता के कारण उनकी जन्माधता के सबध मे शका एव विवाद करना ऐसा कुतक है, जो भगवत्-कृपा के साथ ही साथ पूव सस्कार, जन्मजात प्रतिभा गुणियो के सत्सग और निजी साधना आदि सबकी अवमानना करता है। सूरदास के चाहे चम-चक्षु नही थे, किंतु वे ज्ञान चक्षुओ से सम्पन्न थे। उन्हे अत दृष्टि—दिव्य दृष्टि प्राप्त थी। वे 'हिए की आखो से देखत' थे। इसीलिए उनकी रचनाओ मे ऐसे अद्भुत कथन मिलते है, जैसे किन्ही आँखो वाले प्रतिभाशाली कवियो की किसी भी रचना मे उपलब्ध नही हैं। अत हमे सूरदास की जन्माँधता मे अविश्वास करने का कोई कारण नही जान पडता।

नाम और नाम-छाप—सूरदास की रचनाओ के अत साक्ष्य और 'वार्ता' आदि के बाह्य साक्ष्य से यह ज्ञात नही होता है कि सूरदास का मूल नाम क्या था। उनकी रचनाओ मे जो नाम–छाप मिलती है, उनमे सूरज, सूरजदास, सूर और सूरदास प्रमुख है। यदि यह मान लिया जाय कि इनमे से कोई 'छाप' उनके मूल नाम की भी सूचक होगी, तब अनुमान होता है कि उनका मूल नाम 'सूरज' रहा होगा। सूरज का लघु रूप 'सूर' है। जब सूरज विरक्त होकर भक्ति मार्ग के अनुगामी हो गये, तब उन्हे सूरजदास अथवा सूरदास कहा जाने लगा होगा। किंतु इससे यह नही समझना चाहिए कि 'सूरज' या 'सूर' छाप की सभी रचनाएँ उनके आरंभिक काल की होगी, उत्तर काल की नही, और 'सूरजदास' या सूरदास' छाप की समस्त कृतियाँ उत्तर काल की होगी, आरंभिक काल की नही। वस्तुत ये सभी नाम आरंभ से अत तक सामान्य रूप से उनकी रचनाओ मे मिलते है।

उदाहरणार्थ 'सूरज छाप के कुछ ऐसे पद दिये जाते है, जो उनके आरंभिक काल के नही है। इनकी रचना उन्होने तब की थी, जब वे वल्लभ सप्रदाय मे दीक्षित हो गये थे, –

१ भृंगी री भजि स्याम - कमल - पद, जहा न निसि कौ त्रास।
'सूरज' प्रेम - सिंधु मे प्रफुलित, तहँ चलि करै निवास॥(३३९)

२ मैया ! कबहिं बढैगी चोटी ?
काचौ दूध पियावति पचि-पचि, देत न माखन-रोटी।
'सूरज' चिरजीवो दोउ भैया हरि-हलधर की जोटी॥ (७९३)

इसी प्रकार सूरजदास' या 'सूरदास' छाप के निम्नांकित पद उनके उत्तर काल के न होकर आरंभिक काल के जान पडते हैं। इनकी रचना उनके वल्लभ सप्रदाय मे दीक्षित होन से पहले उस समय हुई होगी, जब वे ज्ञान मार्ग के पथिक होकर सतो की सामान्य भक्ति-भावना के अनुसार राम नाम का सुमिरन करते थे,—

१ को - को न तर्‌यौ हरि - नाम लिएँ।
सुवा पढावत गनिका तारी, व्याध तर्‌यौ सर-घात किएँ॥
जो पै राम-भक्ति नहिं जानी, कहु सुमेर सम दान दिएँ।
'सूरजदास' विमुख जो हरि तें, कहा भयौ जुग कोटि जिएँ॥८९॥

२ हमारे निर्धन के धन राम।
बैकुंठनाथ सकल सुखदाता, 'सूरदास' सुख-धाम॥९२॥

३ सोइ भलौ जो रामहि गावै।
'सूरदास' प्रभु सत-समागम, आनँद अभै-निसान बजावै॥२३३॥

श्री हरिराय जी कृत 'सूरदास की वार्ता' के भावात्मक कथन से ज्ञात होता है कि महाप्रभु वल्लभाचाय जी सूरदास को 'सूर' और गोसाईं विट्ठलनाथ जी उन्हे 'सूरदास' कहा करते थे[1]। ये दोनो नाम ही लोक मे अधिक प्रसिद्ध हुए थे। उनकी रचनाओ मे भी सर्वाधिक पद 'सूर' और 'सूरदास' छाप के ही मिलते है, जब कि सूरज' अथवा 'सूरजदास' छाप के पद अत्यल्प सख्या मे उपलब्ध है।

सूरदास के अनेक पदो मे 'सूर' छाप के साथ 'श्याम' शब्द का उल्लेख मिलता है। उसे 'सूर स्याम' की नाम-छाप माना जाता है। इस मान्यता को वार्ता के उस 'भावात्मक' कथन से बल मिला है, जिसमे कहा गया है कि सूरदास ने सवा लाख पद-रचना का सकल्प किया था जिसकी पूर्ति उनके अतिम काल तक भी नही हो सकी थी। उसके कारण सूरदास अत्यत चितित थे। अतएव उनके आराध्य श्यामसुदर श्रीनाथ जी ने स्वय पदो की पूर्ति कर उन्हे निश्चित किया था। उन पदो की पहचान के लिए उनमे 'सूर स्याम' की छाप लगाई गई[2]। वार्ता का यह कथन 'भावात्मक' है, जिसका अभिप्राय श्रीनाथ जी की भक्त-वत्सलता और उनके द्वारा शरणागत जनो पर अनुग्रह किये जाने के वल्लभ सप्रदायी भक्ति-सिद्धात की पुष्टि करना है। यदि 'वार्ता' के इस भावात्मक कथन को सामान्य रूप मे स्वीकार किया जाय, तब 'सूर स्याम' वाले समस्त पदो को सूरदास के अतिम काल मे रचे हुए मानना होगा। किंतु इस प्रकार के अनेक पद उनके आरभिक एव मध्य काल के भी है। ऐसे कुछ पद यहाँ उद्धृत हैं,—

१ दीन जन क्यो करि आवै सरन ?
भूल्यौ फिरत सकल जल-थल मग, सुनहु ताप-त्रय हरन ॥
पग पग परत कर्म-तम कूपहि, को करि कृपा बचाव।
'सूर' स्याम पद नख-प्रकास विनु, क्यो करि तिमिर नसावै ॥ (४८)

२ रे मन! जनम अकारथ खोइसि।
'सूर' स्याम विनु कौन छुडावै, चले जाउ भई पोइसि ॥ (३३३)

३ इहिं विधि कहा घटैगौ तेरौ।
सबै समर्पौ 'सूर' स्याम कौ, यह साचौ मत मेरौ ॥ (२६६)

४ कबहू तुम नाहिंन गहरु कियौ।
सदा सुभाव सुलभ सुमिरन बस, भक्तनि अभै दियौ ॥
'सूर' स्याम सरवज्ञ कृपानिधि, करुना-मृदुल हियौ। (१२१)

---

१ सूरदास की वार्ता, स० १७५२ की प्रति (स — डा प्रभुदयाल मीतल), पृष्ठ ६४
२ वही, पृष्ठ ५४

पूर्वोक्त पदो मे से स० १ एव २ मे सूरदास की आरभिक मनोदशा की अभिव्यक्ति हुई है, स ३ का पद उस समय की स्थिति का सूचक है, जब सूरदास ने श्री बल्लभाचार्य जी से 'नाम एव 'समर्पण' मत्र की दीक्षा ली थी, और स० ४ के पद मे सूरदास की प्राय मध्यकालीन मनस्थिति व्यक्त हुई है। अतएव ये सभी पद सूरदास के अतिम काल के न होकर आरभ तथा मध्य काल के हैं। इनसे ज्ञात होता है कि वार्ता के तत्सबधी कथन को सामान्य रूप से ग्रहण करना सभव नही है।

आधुनिक काल के कुछ विद्वानो की मान्यता है कि 'सूर स्याम' वाले पद सूरदास की प्रामाणिक रचना नही हैं। ये प्रक्षिप्त है, जिन्हे किसी अन्य कवि ने रचा है। डा जनादन मिश्र का मत है कि 'सूर स्याम' एव 'सूरज' नामक कवि सूरदास से भिन्न थे[1]। किंतु यह मत ठीक नही है। 'सूरज' की भाति 'सूर स्याम' वाले पद भी अष्टछापी सूरदास के है, क्योकि इनकी रचना शैली मे बडी समानता है।

'सूर स्याम' सबधी तर्क-वितर्क इसलिए किये जाते है कि इसे एक शब्द मान लिया गया है। वस्तुत ये दो शब्द है जिनमे 'सूर' तो कवि की नाम-छाप है, और 'स्याम' भगवान् श्रीकृष्ण का सूचक है। पूर्वोक्त पदो से भी यह स्पष्ट होता है। यदि इनमे 'सूर स्याम' को एक शब्द माना जावेगा, तब अथ की सगति नही हो सकेगी। फिर इस सबध मे यह भी विचारणीय है कि 'वार्ता' का यह प्रसग सभी प्रतियो मे नही मिलता है। स १६९७ की आरभिक प्रति मे भी यह प्रसग नही है[2]। अतएव इसे प्रक्षिप्त मानना होगा।

सूरदास के कुछ पदो मे 'सूर स्वामी' और 'सूरदास स्वामी' शब्द मिलते है। इन्हे भी 'सूर स्याम' की भाति एक शब्द समझने की भूल की जाती है। कुछ विद्वानो की मान्यता है कि इन छापो के पद उस समय के हैं, जब सूरदास अपने आरभिक जीवन मे 'स्वामी' कहलाते थे। अतएव 'सूर स्वामी' को भी नाम-छाप मानना चाहिए। किंतु इन पदो मे 'स्वामी' शब्द नाम का अश नही है, वरन् श्रीकृष्ण का सूचक है। कुछ पदो मे 'सूर प्रभु', 'सूर सुजान' आदि उल्लेख भी मिलते हैं। इनमे भी 'प्रभु', 'सुजान' आदि शब्द नाम के अश न होकर श्रीकृष्ण के द्योतक हैं।

इस विवेचन का निष्कर्ष यह है कि सूरदास का मूल नाम सभवत 'सूरज' था, जिसका लघु रूप 'सूर' है, जो लोक मे अधिक प्रचलित हुआ था। भक्ति माग के अनुयायी होने पर उनके नाम के साथ 'दास' शब्द सम्मिलित हो गया। इस प्रकार सूरदास के चार नाम प्रसिद्ध हुए,—

---

१ डा जनार्दन मिश्र का अँग्रेजी शोध-प्रबध 'सूरदास', पृष्ठ ७

२ अष्टछाप (सपादक—श्री कठमणि शास्त्री), पृष्ठ ९४ की पाद-टिप्पणी।

१ सूरज, २ सूरजदास ३ सूर और ४ सूरदास। इन्ही नामो की छाप सूर के पदो मे मिलती है। 'सूर स्याम' कोई पृथक नाम-छाप नही है, और न इससे सबधित पद किसी अन्य कवि के रचे हुए है। ये सभी पद सूरदास के ही हैं।

वश-परपरा और कुटुब-परिवार—सूर की रचनाओ के अत साक्ष्य से और उनके समकालीन एव परवर्ती विद्वानो के प्रामाणिक बाह्य साक्ष्य से सूरदास की वश-परपरा तथा उनके कुटुब-परिवार के सबध मे कोई बात ज्ञात नही होती है। नाभा जी एव प्रियादास आदि ने अनेक भक्त जनो के जीवन-वृत्तात के साथ उनके पारिवारिक व्यक्तियो का भी नामोल्लेख किया है, किंतु सूरदास के सबध मे वे मौन है। श्री हरिराय जी के 'भाव प्रकाश' से केवल इतना ज्ञात होता है कि सूर के माता-पिता अत्यत दरिद्र थे, जिनके चार पुत्रो मे से सूरदास सबसे छोटे थे। श्री हरिराय जी ने उनमे से किसी का नामोल्लेख तक नही किया।

सूरदास की वश-परपरा और उनके कुटुब-परिवार के व्यक्तियो के विषय मे कोई प्रामाणिक जानकारी प्राप्त न होने का कारण यह जान पडता है कि वे बाल्यावस्था मे ही विरक्त होकर घर वालो से पृथक हो गये थे। बाद मे उन्होने कभी उनसे कोई सबध नही रखा। वे जीवन पर्यंत साधु-सतो एव भक्त जनो की मडली मे रहे थे, जहा भक्ति-भाव को ही महत्त्व दिया जाता है, लौकिक बातो की ओर किसी की रुचि नही होती। सूरदास ने भी अपने भौतिक जीवन के सबध मे किसी को कभी विस्तार से नही बतलाया। फलत उनकी वश-परपरा और उनके कुटुब-परिवार विषयक विवरण पर अज्ञान एव अनिश्चय का पर्दा पडा रहा।

आधुनिक काल मे जब सूरदास के विस्तृत जीवन-वृत्तात को जानने की उत्सुकता हुई, तब शोधक विद्वानो की दृष्टि 'साहित्य-लहरी' के वश-परिचय वाले पद पर पडी, और वे उसके निम्नाकित विवरण पर स्वभावतया ही आकृष्ट हुए,—

> **प्रथम ही प्रथु-जाग तें, भे प्रगट अद्भुत रूप।**
> **ब्रह्मराव बिचारि ब्रह्मा राखु नाम अनूप॥**
> **तासु बस प्रसस मे, भौ चंद चारु नवीन॥**
>
> **तासु बस अनूप भौ, हरचद अति बिख्यात॥**
> **आगरे रहि, गोपचल मे रह्यौ ता सुत बीर।**
> **पुत्र जनमे सात वाके महा भट गभीर॥**
>
> **भयौ सातौ नाम सूरजचद मद निकाम॥**
> **सो समर करि साहि सो, सब गये बिधि के लोक।**
> **रह्यौ सूरजचद दृग तें हीन भरि-भरि सोक॥**

उक्त पद के विवरण को वे सूरदास की वश-परपरा से जोडने के लोभ का सवरण नही कर सके। फलत इसकी प्रामाणिकता के परीक्षण की भी उन्होने आवश्यकता नही समझी। श्री कृष्णदेव शर्मा द्वारा लिखित और देहरादून से प्रकाशित 'सूर-वश-निणय' (रचना-सन् १६४१) नामक पुस्तिका इसी प्रकार की प्रवृत्ति का परिणाम है। किंतु अब यह सिद्ध हो गया है कि 'साहित्य-लहरी का यह पद प्रक्षिप्त है, इसे भाट जाति के सूरजचद नामक किसी सामान्य कवि ने अपने वश की गौरव-वृद्धि तथा निजी यश-सवर्धन के प्रलोभन मे पड कर रचा और 'साहित्य-लहरी' मे सम्मिलित कर दिया था। उसका उद्देश्य अपने को अष्टछापी सूरदास से अभिन्न प्रचलित करने का रहा होगा, जिसकी पूर्ति के लिए उसने वह अपराध करने मे सकोच नही किया। वस्तुत सूरजचद भाट सूरदास से भिन्न कोई परबर्ती कवि था।

इस पद की अप्रामाणिकता के सबध मे हम अपने ग्रथ 'अष्टछाप-परिचय' (पृष्ठ १२०), 'सूर-निणय' (पृष्ठ ५७) और साहित्य-लहरी के सटीक सस्करण की 'भूमिका' (पष्ठ ३८) मे विस्तार से लिख चुके हैं। यहा पर सक्षेप मे इतना कहना ही पर्याप्त होगा,—१ सूरदास की प्रकृति अपने भौतिक जीवन पर प्रकाश डालने के विरुद्ध है, अत यह पद उनके द्वारा रचा हुआ नही है, २ श्री हरिराय जी ने सूरदास के अल्पज्ञात जीवन वृत्तात के अनुसधान मे बडा परिश्रम किया था। यदि यह पद सूरदास का रचा होता, तो इसकी जानकारी उन्हे अवश्य होती, और वे उसके अनुसार सूर का वश-परिचय लिखते। किंतु उन्होने ऐसा कुछ नही किया, अतएव यह पद प्रामाणिक नही है।

'साहित्य-लहरी' के इस प्रक्षिप्त पद मे सूरजचद भाट के पिता का नामोल्लेख नही किया गया है। जिन विद्वानो ने इस पद के विवरण को सूरदास पर आरोपित करने की चेष्टा की है, उन्होने रामदास को उनका पिता मान लिया है, जो वस्तुत अकबरी दरबार के गायक ग्वालियरी सूरदास के पिता का नाम है। कुछ विद्वानो ने रामचद्र नाम की कल्पना कर ली है। डा हरिहरनाथ टडन ने वार्ता साहित्य का जीवनीपरक अध्ययन' शीर्षक के अपने शोध-प्रबध मे वार्ताओ की प्रामाणिकता का समथन किया है। किंतु उन्होने न मालूम किस आधार पर सूरदास के पिता का नाम रामदास लिखा है (देखिये, 'वार्ता साहित्य', पृष्ठ २५१), जब कि उन्होने स्वीकार किया है,—'अष्टछाप और वल्लभ सप्रदाय' तथा 'सूर-निणय' आदि मे इसके सबध मे जो लिखा जा चुका है, उससे अधिक और विशेष महत्त्व की सामग्री मुझे नही मिली।' (**वार्ता साहित्य—डा हरिहरनाथ टडन, पृष्ठ २५२**)

निष्कर्ष यह है कि सूरदास की वश-परपरा और उनके कुटुब-परिवार का प्रामाणिक विवरण उपलब्ध नही है। उनमे से किसी का नामोल्लेख भी नही मिलता है। रामदास अथवा रामचद्र सूरदास के पिता कदापि नही थे।

बाल्य - काल—सूरदास जी का पिता एक निर्धन ग्रामीण ब्राह्मण था, और उनकी माता एक सामान्य गृहिणी थी। उनके चार पुत्र थे, जिनमे सूरदास सबसे छोटे थे। जब वे उत्पन्न हुए, तब उनके माता-पिता हर्षित होने की अपेक्षा अत्यत शोकाकुल हो गये थे। इसका कारण घर की दरिद्रता थी। उनके पिता को अपनी विपन्नता के कारण पहले ही स्त्री-पुत्रो के भरण-पोषण मे बडी कठिनाई हो रही थी। किंतु जब सूरदास के रूप मे एक जन्माध शिशु का जन्म हुआ, तब उसे यह चिंता सताने लगी कि वह अपनी दीन हीन दशा मे इस विकलाग बालक का पालन-पोषण किस प्रकार कर सकेगा! ऐसी परिस्थिति मे सूरदास इस भू-तल पर अवतीण होते ही अपने माता-पिता एव भाईयो आदि को भार स्वरूप जान पडने लगे थे। उसके कारण उन्हे अपने आत्मीय जनो का सहज स्नेह कभी प्राप्त नही हुआ। फलत उनका बाल्यकाल अत्यत उपेक्षा एव अपमान के वातावरण मे बीतने लगा।

गृह-त्याग—जब तक वे अबोध थे, तब तक उन्हे अपनी दुदशा का अनुभव नही हुआ था, किंतु जैसे ही वे कुछ समझने-बूझने लगे, इन्हे अपनी दयनीय स्थिति मे घुटन जान पडने लगी। यहा तक कि बाल्यावस्था मे ही उन्हे अपनी स्थिति असहनोय हो गई। फलत वे अपने माता-पिता, बधु-बाँधव और सगी-साथियो को छोड कर अकेले ही घर से चल दिये। उनके घर वालो ने भी उन्हे रोकने की कोई खास चेष्टा नही की!

उस समय सूरदास की जैसी मनोदशा थी, उसका सकेत उनके निम्नाकित पद मे मिलता है। यद्यपि यह पद गोपियो के सबध मे कहा गया है, किंतु यह सूरदास की तत्कालीन मनोदशा का भी सूचक है,—

विमुख जननि कौ संग न कीजै।
इनके विमुख वचन सुनि स्रवननि, दिन-दिन देही छीजे ॥
मोकों नेंकु नही ये भावत, परवस कौ कहा कीजै ॥
धिक इहि घर, धिक इन गुरुजन कौ, इनमे नही बसीजै ॥२५४५॥

सीही गाँव के बाहर तालाब के तट पर—जिस समय अधे बालक सूरदास अपनी लाठी टेकते हुए घर से निकले थे, उस समय पूव सस्कार वश उनके हृदय मे विरक्ति भावना और भगवद् भक्ति का उदय हो गया था। वे हरि-नाम का जाप करते हुए सीही गाँव के बाहर आ गये। फिर वहाँ से चार कोस दूर एक तालाव के तट पर पहुँच कर उन्होने निकटवर्ती पीपल वृक्ष की छाया मे विश्राम किया। अपराह्न का समय था, प्यास से उनका गला सूख रहा था। अतएव उन्होने जी भर कर पानी पिया। फिर वे आगामी योजना पर विचार करने लगे।

वाक्-सिद्धि—भगवान् बडे दयालु है। जिसका कोई सहारा नही, उसे वे आश्रय प्रदान करते है। उनकी लीला बडी विचित्र है। उसके कारण जहाँ सूरदास को जन्माधता एव दरिद्रता का अभिशाप मिला था, वहाँ उन्हे वाक्-सिद्धि का वरदान भी प्राप्त था। वह वरदान उन्हे शकुन विद्या और काव्य-सगीतादि कलाओ की जन्मजात प्रतिभा के रूप मे प्रतिफलित हुआ था। उनका कठ-स्वर जन्म से ही बडा मधुर था। वे शकुन विचार कर जो कुछ कहते थे, वह सत्य होता था। उसके साथ ही वे मधुर कठ से काव्यबद्ध ऐसा सुदर गायन करते थे, जो श्रोताओ को मुग्ध कर देता था। उनके वे दैवी गुण उनमे बाल्यावस्था से ही प्रकाशित होने लगे थे।

जिस समय बालक सूरदास तालाब के तटवर्ती पीपल के वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे, उसी समय उस गाँव का जमीदार अपनी खोई हुई दस गायो को ढूँढता हुआ वहाँ आ पहुँचा। सूरदास ने शकुन विचार कर उन गायो के मिलने का ठिकाना जिमीदार को बतलाया। सयोग से वे गाये उसी स्थान पर मिल गई। इससे वह जिमीदार बडा प्रभावित हुआ। उसने पहले तो सूरदास को उनके घर वापिस भेजने की चेष्टा की, किंतु जब उसे ज्ञात हुआ कि वे वहाँ से नही जावेगे, तब उसने उसी स्थल पर उनके रहन-सहन और खान-पान की यथोचित व्यवस्था कर दी। उनकी टहल-चाकरी के लिए एक सेवक नियुक्त कर दिया, और उनके निवास के लिए तालाब के किनारे पीपल के वृक्ष के नीचे एक झोपडी बनवा दी। इस प्रकार निराश्रित सूरदास को उनकी वाक् सिद्धि के कारण अनायास ही आश्रय मिल गया।

सूरदास की शकुन विद्या विषयक दक्षता का उल्लेख श्री हरिराय जी ने अपने भावात्मक कथन द्वारा किया है[1]। यद्यपि इसका समर्थन किसी अन्य सूत्र से नही होता, तथापि उनके पदो से स्पष्ट है कि वे ज्योतिष विद्या के दोनों अगो—फलित एव गणित के अच्छे जानकार थे। उनके आरभिक जीवन की सफलता मे शकुन विद्या बडी सहायक हुई थी। उसी के कारण उन जैसे निराश्रित अधे बालक को सुखद आश्रय मिला था, और जीवन-यापन की समस्त सुविधाएँ प्राप्त हुई थी।

भक्ति-साधना और ज्ञानार्जन—सीही गाँव के बाहर का वह एकात स्थल सूरदास की जीवन-यात्रा का प्रथम पडाव बना। वहाँ पर उन्हे जो वातावरण मिला, वह उनके घर से सर्वथा भिन्न था। घर पर वे उपेक्षित एव असमानित होने के कारण क्षुब्ध तथा अशात रहते थे। उस स्थल पर उन्हे जो आदर एव सन्मान मिला उससे वे जीवन मे प्रथम बार शाति का अनुभव करने लगे। उन्होंने सतोष की साँस ली, और भगवान् को धन्यवाद दिया। वे वहाँ सुख पूवक रहते हुए भक्ति-साधना एव ज्ञानार्जन मे लग गये।

---

1 सूरदास की वार्ता (सपादक—डा प्रभुदयाल मीतल) पृष्ठ ६—७

सूरदास की शकुन विद्या और उनके मनोरम गायन के कारण वह स्थल शीघ्र ही बडा प्रसिद्ध हो गया। शकुन पूछने वालो और गान-प्रेमियो की वहा भीड रहने लगी। उसके साथ ही साधु-सत एव गुणी जन भी घूमते फिरते वहा आकर टिकने लगे। सूरदास उन सबके साथ यथोचित व्यवहार किया करते थे। वे शकुन पूछने वाले व्यक्तियो के प्रश्नो का उत्तर देकर और गान-प्रेमियो को गायन से सतुष्ट कर शीघ्र विदा कर देते थे, किंतु साधु-सतो एव गुणी जनो को आग्रह पूर्वक वही रोक लेते थे। उनसे वे धर्मोपासना, ज्ञान विज्ञान एव विभिन्न प्रकार की विद्याओ एव कलाओ की जानकारी प्राप्त करते थे। उस काल के साधु-सत चलते-फिरते विद्यालय थे। यायावरी वृत्ति के वे सत जन जहाँ अस्थायी रूप मे रुक जाते थे, वहा ज्ञान गगा प्रवाहित होने लगती थी। इस प्रकार का सुयोग चातुर्मास्य के समय प्राय मिलता था। सूरदास उससे पूरा लाभ उठाते थे।

सूर साहित्य के सभी अध्येता एव आलोचक गण एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि सूरदास परम भक्त और अनुपम ज्ञानी थे। वे कई भाषाओ को जानते थे और उनका शब्द-भडार अत्यत समृद्ध था। वे सुकठ गायक एव रससिद्ध कवि होने के साथ ही साथ सगीत शास्त्र एव काव्य शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। पुराणादि धर्म ग्रथो मे उनकी गहरी पैठ थी। यह सब एक नेत्रहीन व्यक्ति के लिए किस प्रकार सभव हुआ, यह आधुनिक आलोचको के लिए एक अनबूझ पहेली जान पडती है।

यह निर्विवाद तथ्य है कि सूरदास को किसी विद्यालय मे विधि-पूवक शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नही मिला था। नेत्रहीन होने के कारण 'मसि-कागद छीयौ नहीं' की उक्ति कबीर से अधिक उनके लिए चरितार्थ होती है। सूरदास ने धर्मोपासना एव ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र मे जो कुछ प्राप्त किया, वह सब सत्सग से किया था। कबीर भी इसी प्रकार महाज्ञानी हुए थे। फलत सूरदास ने पूर्व सस्कार, जन्मजात प्रतिभा, भगवत् कृपा और निजी साधना एव अभ्यास के द्वारा छोटी आयु मे ही विविध विद्याओ एव कलाओ की जानकारी प्राप्त कर ली थी। बाद मे उसमे उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही थी।

ख्याति और प्रतिष्ठा—सूरदास के अनुपम गुणो के कारण उनकी ख्याति सीही क्षेत्र मे दूर-दूर तक हो गई थी। अनेक स्थानो से बहु सख्यक व्यक्ति उनके पास आने लगे। कोई उनसे शकुन पूछता था, तो कोई उनके मधुर सगीत का आनद प्राप्त करता था। सब लोग उनके प्रति श्रद्धा रखते थे, और धन-धान्य एव वस्त्रा-भूषणादि की उन्हे भेंट देते थे। उनका महत्व खूब बढ गया और वे वहाँ पूजे जाने लगे। इससे उनके पास यथेष्ट वैभव हो गया था। झोपडी के स्थान पर सुदर भवन बन गया। वे 'स्वामीजी' कहे जाने लगे, और अनेक व्यक्ति उनके शिष्य-सेवक होकर दिन-रात उनकी सेवा-चाकरी करने लगे। उनकी प्रतिष्ठा बढ गई।

व्याकुलता का अनुभव—आदर-सन्मान और धन वैभव की कमी न होने पर भी सूर स्वामी के मन को पूर्ण शांति नही मिल पा रही थी। वे कभी कभी बडे व्याकुल हो जाते थे। इसका कारण उनकी समझ मे नही आता था। उन्होने सोचा, उनकी विकलता का कारण कदाचित् उनकी जन्मांधता है। मानव तन मे नेत्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण इंद्रिय है। नेत्रहीन के लिए यह भौतिक जगत् अंधकारपूर्ण होता है। इसका अनुभव करते ही वे अत्यंत विह्वल हो जाते थे। उनके विनय संबंधी कुछ पद इस तथ्य के द्योतक है कि जीवन और जगत् की गति-विधियो से चाक्षुष सम्पर्क न कर सकने के कारण उन्हे मर्मांतक वेदना होती थी। नेत्रहीनता जन्य विकलांगता से उद्विग्न होने पर वे कभी-कभी भगवान् के प्रति व्यंग्य-वचन भी कहने लगते थे!

एक पद मे सूरदास अपने उपास्य देव के त्याग और दान पर व्यंग्योक्ति करते हुए कहते हैं,—बडे त्यागी और दानी कहलाते हो! तुमने जिनको जब कभी कुछ दिया है, वह किसी कारण से दिया है। सूरदास के साथ वैसा कोई कारण नही था, अत उसे नेत्र भी नही दिये,—

कहावत ऐसे त्यागी दानि।
चार पदारथ दिए सुदामाहिं अरु गुरु के सुत आनि।
रावन के दस मस्तक छेदे, सर गहि सारँग-पानि।
लंका दई विभीषन जन को, पूरवली पहिचानि॥
विप्र सुदामा कियौ अजाची, प्रीति पुरातन जानि।
'सूरदास' सो कहा निहोरौ, नैननि हू की हानि॥१३५॥

अन्य पद मे वे अपने उपास्य देव से मानो झगड ही पडे है! झुझलाहट और खीझ मे वे उनसे पूछने लगते है- 'तुम्हारा यह गोविंद नाम किसने रखा है? गोविंद तो इंद्रियो के दाता-स्वामी होते है, किंतु तुमने मुझे जन्म से ही नेत्र जैसी प्रधान इंद्रिय से रहित कर मेरे साथ अत्यंत निष्ठुरता का व्यवहार किया है! वे कहते है,—

किन तेरौ गोविंद नाम धर्यौ?
'सूर' की विरियाँ निठुर होइ बैठे, जनम अंध कर्यौ॥

एक अन्य पद मे वे अपनी जन्मांधता के अभिशाप से त्राण पाने के लिए आर्त्तनाद करते हुए भगवान् रुक्मणी-रमण को पुकार कर कहते है,—

तब विलंब नहिं कियौ, जबै हिरनाकुस मार्यौ।
तब विलंब नहिं कियो, केस गहि कंस पछार्यौ॥
तब विलंब नहिं कियौ, सीस दस रावन कट्टे।
तब विलंब नहिं कियो, सबै दानव दहपट्टे॥
कर जोरि 'सूर' विनती करै, सुनहु न हो रुक्मिनि-रमन!
काटो न फंद मो अंध के, अब विलंब कारन कवन? १८१॥

दिव्यदृष्टि की प्राप्ति—सूरदास की वह आर्त्त पुकार भगवान् श्रीहरि ने मानो सुन ली, और उनकी कृपा से वे दिव्यदृष्टि सपन्न हो गये। बाह्य चक्षुओ का अभाव तब उन्हे कष्ट नही पहुँचाता था। बल्कि वे जीवन एव जगत् की समस्त गति विधियो को चम चक्षुओ वाले व्यक्तियो की अपेक्षा कही अधिक स्पष्टता से देखते हुए यथार्थ रूप मे उनका कथन एव गायन करने लगे। उनके उस अलौकिक गुण के कारण सब लोग उन्हे चमत्कारी महात्मा मानते थे। उससे सूर स्वामी के आदर-सन्मान और धन वैभव मे भी वृद्धि होने लगी।

आकर्षक व्यक्तित्व और माया-जाल—इस प्रकार सूरदास की आयु १८ वष की हो गई। उनका व्यक्तित्व आकषक और शारीरिक गठन सुदर था। वे गौर वण, पुष्ट शरीर तथा लबे कद के सुडौल एव सुदशन युवक थे। उनके पास यथेष्ट वैभव था, और सुख से जीवन-यापन के सभी साधन उन्हे सुलभ थे। यदि कमी थी, तो केवल चम-चक्षुओ की। उसकी सुखद सपूर्ति भगवद्दत्त अतर्दृष्टि से हो गई थी। किंतु माया को अभी उनकी कठिन परीक्षा लेनी थी। वह उनके चारो ओर अपना मोह जाल फैलाने लगी। उनके यौवन की उन्मादपूण अवस्था का उसे बल मिला था। फलत सूर स्वामी माया-जाल मे फँस गये। उनका भक्ति-भाव तिरोहित और ज्ञान-वैराग्य शिथिल होने लगा। वे विलासतापूर्ण जीवन-यापन की ओर उन्मुख हुए। पर भक्त-वत्सल भगवान् ने उन्हे बचा लिया। वे यह नही चाहते थे कि ससारी जीवो की भाँति सूरदास भी माया-जाल मे फँस कर अपना जीवन व्यर्थ नष्ट कर दे। उन्हे तो उनके द्वारा ससारी जीवो का कल्याण कराना था। फलत उसी के अनुरूप परिस्थिति पैदा कर दी।

आत्म-बोध—एक रात्रि को जब वे सो रहे थे, तब अचानक उनकी आखे खुल गईं। वे अपनी वतमान दशा पर सहसा विचार करने लगे। उन्हे बोध हुआ कि उनका अब तक का जीवन व्यथ गया। उस स्थल पर रहने का उनका जो उद्देश्य था, उसकी किंचित भी पूर्ति नही हो सकी। वे माया-जाल मे फँस कर अपने लक्ष्य को भूल गये। उस विचार के आते ही उन्हे घोर मानसिक वेदना होने लगी, और वे अपने कृत्य पर पश्चाताप करने लगे। उस समय की मनोदशा उनके अनेक पदो मे अभिव्यक्त हुई है।

निम्नाकित पद म उन्होने माया की प्रबलता का कथन इस प्रकार किया है,—

हरि, तेरौ भजन कियौ न जाइ।
कहा करौ तेरी प्रबल माया, देति मन भरमाइ॥
जबै आवौं साधु सगति, कछुक मन ठहराइ।
ज्यौं गयद अन्हाइ सरिता, बहुरि वहै सुभाइ॥

वेष धरि - धरि हरयौ पर धन, साधु - साधु कहाइ ।
जैसे नटवा लोभ कारन, करत स्वाग बनाइ ।।
करौ जतन, न भजौं तुमकौ, कछुक मन उपजाइ ।
'सूर' प्रभु की सबल माया, देति मोहि भुलाइ ।।४५।।

उस समय के विलासोन्मुख जीवन-यापन और ठाट बाट के रहन-सहन की निंदा उनके निम्नाकित पदो मे इस प्रकार की गई है,—

१ **आछौ गात अकारथ गारयौ ।**
निसि-दिन विषय-विलासनि बिलसत, फूटि गई तव चार्यौ ।।
अब लागो पछितान पाइ दुख, दीन दई को मारयौ ।
तातै कहत दयालु देव-मनि, काहे 'सूर' बिसार्यौ ।।१०१।।

२ **औसर हारयौ रे, त हार्यौ ।**
मानुष जनम पाइ नर बौरे, हरि कौ भजन बिसार्यौ ।।
पहिरि पटवर, करि आडबर, यह तन मूढ सिंगारयौ ।।
हरि भजि, बिलब छाँडि 'सूरज' सठ, ऊँचै टेर पुकारयौ ।।३३६।।

निम्नाकित पद मे उन्होने 'स्वामी' बनने का पश्चाताप करते हुए कहा है,—

किते दिन हरि-सुमिरन बिनु खोए ।
तेल लगाइ कियौ रुचि मदन, बस्तर मलि-मलि धोए ।
तिलक बनाइ चले स्वामी ह्वै, विषयिनि के मुख जोए ।।
'सूर' अधम की कहौ कौन गति, उदर भरे, परि सोए ।।५२।।

सीही क्षेत्र का परित्याग—सूरदास उस रात्रि की शेष अवधि मे तनिक भी नही सो सके थे। उनका मन आत्म-ग्लानि से छटपटाता रहा था। प्रात काल होते ही उन्होने सेवक भेज कर अपने द्रव्यार्थी पिता को बुलवाया, और अपना समस्त वैभव उसे सौप दिया। फिर वे केवल एक वस्त्र धारण कर और लाठी लेकर सीही क्षेत्रसे चल दिये।

सूरदास की तत्कालीन मनोदशा का सकेत निम्न पद मे मिलता है,—

हरि - रस तौ अब जाइ कहू लहियै ।
गएँ सोच आएँ नहि आनँद, ऐसौ मारग गहिय ।।
ऐसी जो आवै या मन मे, तौ सुख कहाँ लौ कहियै ।
अष्ट सिद्धि नव निधि 'सूरज' प्रभु, लीजै जो कछु चहियै ।।३६१।।

उनके शिष्य-सेवको मे से जो माया मे ग्रस्त थे, वे उसी स्थल पर रह गये, किंतु जो सच्चे साधक थे, वे उनके साथ हो लिये। इस प्रकार सूरदास ने स १५५३ मे अपनी १८ वष की आयु मे अपने जन्म और आरभिक जीवन से सबधित सीही क्षेत्र को सदा के लिए छोड दिया।

मथुरा मे—सीही क्षेत्र को छोडने के अनतर सूरदास श्रीकृष्ण के जन्म-स्थान मथुरा नगर की ओर चल दिये। मार्ग के कतिपय स्थलो मे रुकते हुए वे स १५५४ के लगभग मथुरा पहुँचे, और वहाँ के यमुना तटवर्ती विश्राम घाट पर उन्होने डेरा डाला। मथुरा की परपरागत धार्मिक महत्ता से वे बडे प्रभावित थे, किंतु वहाँ की तात्कालिक भौतिक स्थिति को देख कर उन्हे बडी निराशा हुई। कारण यह था कि उस काल मे मथुरा मडल दिल्ली के सुलतान सिकदर लोदी की मजहबी तानाशाही से आतकित एव उत्पीडित था।

मथुरा निवासियो ने सूरदास को बतलाया कि इस नगर की स्थिति पहले और भी अधिक शोचनीय थी। सुलतान के स्थानीय राजकमचारी गण हिंदुओ को यमुना मे स्नान तक नही करने देते थे, और उनके धार्मिक कृत्यो मे अनेक बाधाएँ डालते थे। उनके अमानवीय व्यवहार से तब मथुरा की हिंदू जनता मे हा-हाकार मचा हुआ था। प्राय ४ वर्ष पूर्व स १५५० के लगभग वहाँ पर वल्लभ भट्ट नामक एक तेजस्वी युवक धर्माचाय आये थे। उन्होने अपने आत्म-बल से सुलतान और उसके कमचारियो को प्रभावित कर मथुरा की हिंदू जनता के लिए कुछ धार्मिक सुविधाएँ दिला दी थी, किंतु वहाँ की स्थिति फिर भी बडी तनावपूण बनी रही। हिंदू जनता राजकीय भय के वातावरण मे बडी कठिनता से जीवन-यापन कर रही थी।

सूरदास के निम्नाकित पद मे कस के आतक से भयभीत गोप-समाज की मनोदशा का कथन हुआ है, किंतु उसके ब्याज से मथुरा की तत्कालीन राजनैतिक स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया है,—

> **हम अहीर ब्रजवासी लोग।**
> **सिर पर कस मधुपुरी बैठ्यौ, छिनकहि मै करि डारै सोग॥**
> **फूंकि-फूकि धरनी पग धारौ, महा कठिन ये समौं अजोग॥२५४॥**

सूरदास मथुरा जैसे सुप्रसिद्ध तीथ-स्थान मे स्थायी रूप से निवास करने का आये थे, किंतु वहा की भयावह स्थिति के कारण उनका मन नही रम सका। उनकी चमत्कारपूण शकुन विद्या और प्रभावशाली गायन कला के कारण उन्हे वहा धन तथा यश की जो प्राप्ति होने लगी, वह भी उनके मथुरा-निवास मे बाधक बन गई। कारण यह था कि उनकी समृद्धि और प्रतिष्ठा के कारण जहाँ मथुरा के यवन राजकर्मचारी उनसे ईर्ष्या करने लगे, वहा तीथ-पुरोहितो एव पडा-पुजारियो को अपनी आजीविका मे कमी आने की आशका होने लगी।

सूरदास को न तो धन की चाह थी, और न यश की। वे तो निश्चित होकर भगवत्-भजन करना चाहते थे, किंतु मथुरा नगर की तत्कालीन स्थिति मे वह सभव

नही था। ब्रज के अन्य धार्मिक स्थल गोकुल एव गोवर्धन भी तब तक आवास के अनुकूल नही बन सके थे। वृदावन, नदगाँव बरसाना, कामवन तो सघन वनो से आच्छादित थे। अतएव सूरदास को मथुरा मडल से हट कर अन्यत्र जाना आवश्यक हो गया था।

उस समय सूरदास की जैसी मनोदशा थी उसका सकेत 'देवहूति कपिल सवाद' नामक उनकी रचना मे मिलता है। उसमे भक्तजनो के कर्त्तव्य का निर्देश करते हुए कहा गया है,—'उन्हे अधिक प्राप्ति का उद्योग छोड देना चाहिए, और ऐसे स्थान पर जाकर निवास करना चाहिए, जहाँ किसी प्रकार का भय न हो। यदि तीथ स्थान मे भय का वातावरण हो, तब उसका भी परित्याग कर देना चाहिए—

वहुतै कौ उद्यम परिहरै। निभय ठौर बसेरौ करै॥
तीरथ हू मे जो भय होइ। ताहू ठाउँ परिहरै सोइ[1]॥

'रेणुका तीथ' की ओर—जब मथुरा मडल के किसी स्थल पर सूरदास का टिकना समव नही हुआ, तब वे अन्यत्र जाने का विचार करने लगे। वे किसी ऐसे स्थल पर जाना चाहते थे, जहा वे शकुन पूछने वाले अवाछनीय व्यक्तियो और गायन सुनने वाले तमाशबीनो की भोड से बचते हुए निभय एव शात चित्त से अपनी भक्ति साधना कर सके। साथ ही वह श्रीकृष्ण के लीला धाम से अधिक दूर भी नही रहना चाहते थे। इस प्रकार के स्थल की खोज मे वे मथुरा से आगरा की ओर चल दिये। उनके साथ कुछ विश्वसनीय शिष्य—सेवक थे। वे माग मे कई स्थलो पर रुके, किंतु वे उन्हे अपनी रुचि के अनुकूल ज्ञात नही हुए। फिर वे आगे बढ कर 'रेणुका तीर्थ' मे पहुँचे और वहा के एक स्थल पर उन्होने डेरा डाला।

सूरदास के समय मे रेणुका तीथ एक प्रसिद्ध धार्मिक स्थल था। उसके सबध मे परपरा से यह किवदती प्रचलित रही है कि पुरातन काल मे वहाँ परशुराम जी के माता-पिता रेणुका एव जमदग्नि ऋषि का आश्रम था। पाँडवो ने अपने बनोवास के काल मे वहाँ तपस्या की थी। उस स्थल के धार्मिक महत्व के साथ ही साथ उसकी सामाजिक महत्ता भी थी, क्यो कि यमुना के जल-माग से यात्रा एव व्यापार करने वालो का वह मुख्य पडाव था। वहाँ के धार्मिक वातावरण के कारण वह साधु-सतो एव धार्मिक जनो के आवागमन का केन्द्र बना हुआ था। सूरदास को वह स्थान अपनी साधना के लिए उपयुक्त ज्ञात हुआ।

---

१ **सूरसागर (ना प्र सभा), तृतीय स्कध, पृष्ठ १२४**

'गऊघाट' पर—रेणुका तीर्थ के निकट यमुना तटवर्ती 'गऊघाट' नामक एक एकात एव रमणीक ऊँचे स्थल को सूरदास ने अपने आवास तथा भजन ध्यान के लिए पसद किया। उनके शिष्य-सेवको ने वहाँ कुटी बना दी। सूरदास वहाँ रह कर अपनी उपासना-भक्ति एव सगीत-साधना मे लग गये। ऐसा अनुमान है कि सूरदास ने स १५५५ के लगभग रेणुका तीथ के 'गऊघाट' पर आकर निवास किया था। सीही के पश्चात् वह उनकी भक्ति-साधना का द्वितीय स्थल था।

इस समय 'गऊघाट' आगरा से प्राय १५ किलोमीटर की दूरी पर है। इसके निकट रेणुका तीर्थ, पाडवो का तप-स्थल और कैलास आदि कई धार्मिक स्थान है। गऊघाट से प्राय १ किलोमीटर आगरा की ओर एक अन्य जीण स्थल है, जिसको सरवर सुलतान की समाधि कहा जाता हे। सरवर सुलतान एक चमत्कारी मुसलमान फकीर था, जिसके प्रति कुछ हिंदुओ की भी आस्था थी। उस फकीर की समाधि के नीचे की ओर भरवनाथ का मदिर है। इन सबसे ज्ञात होता है कि सूरदास के समय मे गऊघाट एक ऐसा पुण्य स्थल था, जिसके ओर-पास अनेक धम-स्थान थे। इनसे उसकी धार्मिक महत्ता पर अच्छा प्रकाश पडता है।

'गऊघाट' पर निवास करते समय सूरदास को धणप्राण साधु-सतो और विविध विद्याओ एव कलाओ के गुणी जनो से सपक करने का स्वर्णिम सुयोग प्राप्त हुआ था। उसके कारण उनकी धर्म-निष्ठा, भक्ति-भावना और कलाप्रियता की अत्यधिक उन्नति हुई थी। जब वे गऊघाट पर आकर रहे थे, तब निकटवर्ती ग्वालियर राज्य पर मानसिंह तोमर (शासन काल स १५४३ – स १५७६) का आधिपत्य था। तोमर नरेश सगीत कला का विशेषज्ञ और सगीतज्ञो का बडा आश्रयदाता था। उसके दरवार मे उस काल के अनेक महान् सगीतज्ञ थे, जिनमे बैजू, बक्सू, पाण्डवीय, लोहग, महमूद और करण प्रमुख थे। उन सवने सगीत की तत्कालीन शास्त्रीय एव लोक शैलियो का समन्वय कर एक नवीन गायन-शैली का प्रचार किया था, जो 'ध्रुपद' के नाम से प्रसिद्ध हुई थी। वे सब महान् सगीतज्ञ रेणुका तीर्थ की धार्मिक महत्ता के कारण गऊघाट पर भी जाते रहे होगे, जिनके सत्सग मे सूरदास का सगीत कला मे पारगत होना स्वाभाविक था।

जब से सूरदास 'गऊघाट' पर आये थे, तब से उनके मन, मस्तिष्क और अतस्तल मे ज्ञान-वैराग्य की प्रबल धारा प्रवाहित हो रही थी। उसने उन्हे शकुन विद्या की चमत्कारिता से विमुख कर दीनतापूण दास्य भाव की ओर अधिकाधिक उन्मुख कर दिया था। उनका अधिकाश समय तपस्या एव भगवद्-भजन के साथ-साथ ज्ञान-वैराग्य, दीनता और दास्य विषयक पदो की रचना एव उनके गायन मे बीतता था। आशु कविता मे कुशल, सगीत कला मे निष्णात और मधुर कठ के धनी

होने के कारण वे पदो की तात्कालिक रचना द्वारा उन्हे ताल, स्वर, लय और राग बद्ध कर मनोरम शैली में गाया करते थे। उनका गायन ऐसा प्रभावोत्पादक होता था कि सुनने वाले आत्म-विभोर हो जाते थे। उनमें से अनेक श्रद्धालु जन सूरदास के शिष्य-सेवक हो गये थे। उनके कारण सीही की भाँति गऊघाट क्षेत्र मे भी 'सूरस्वामी' के रूप मे उनकी बडी ख्याति हुई थी।

उस स्थल पर सूर स्वामी अपनी साधना की उच्चतर भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित थे। वे तपस्या की अग्नि मे तप कर खरे कुदन की भाँति दीनता के दैदीप्यमान स्वरूप हो गये। दुनिया चाहे उन्हे कितना ही बडा महात्मा मानती थी, किंतु वे स्वय अपनी उस स्थिति से सतुष्ट नही थे। उनके मन को पूण शाति नही मिल सकी थी, जिसे पाने के लिए वे अत्यत व्याकुल थे। वह एक ऐसा विरोधाभास था, जिसे चेष्टा करने पर भी वे नही समझ पा रहे थे। जिस समय सूर स्वामी मानसिक अशाति के अपार पारावार मे डुबकियाँ लगा रहे थे, उसी समय ऐसा सयोग उपस्थित हुआ जिसने उन्हे शाति के कगार पर पहुँचा दिया। वह सयोग पुष्टि सप्रदाय के प्रवर्तक श्री वल्लभाचाय जी के गऊघाट पर आने से उपस्थित हुआ था।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि सूरदास के जन्म से लेकर उनके 'गऊघाट' के निवास-काल तक का यह समस्त विवरण श्री हरिराय जी द्वारा सपादित 'भावनात्मक' चौरासी वैष्णवन की वार्ता मे प्राप्त 'सूरदास की वार्ता' के आरभिक उल्लेख पर आधारित था। अब आगे का वृत्तात श्री गोकुलनाथ जी द्वारा कथित 'मूल' और श्री हरिराय जी कृत 'भावात्मक' वार्ता के सयुक्त विवरण के अनुसार लिखा जावेगा।

श्री वल्लभाचार्य जी से भेंट—'मूल' चौरासी वैष्णवन की वार्ता के अतगत 'सूरदास की वार्ता' का आरभ करते हुए श्री गोकुलनाथ जी ने कहा है —'एक समै श्री आचाय जी महाप्रभु आप अडैल तै ब्रज कौ पधारे। तहा आप गऊघाट ऊपर उतरे। सो गऊघाट के ऊपर सूरदास जी कौ स्थल हतौ।' वह घटना स १५६७ की है। उस समय श्री वल्लभाचार्य जी अपने निवास-स्थान अडैल से ब्रज के गोवधन गाव को जाते हुए गऊघाट पर रुके थे। उन्होने अपने परिकर सहित वहा विश्राम करने के लिए पडाव डाला था। उससे पहले वे अपने दार्शनिक सिद्धात और भक्ति सप्रदाय के प्रचाराथ तीन बार देशव्यापी पद-यात्राएँ कर चुके थे। उस अवसर पर उन्होने शाकर मायावाद और विविध धम सप्रदायो के पाखडवाद का खडन कर विशुद्ध ब्रह्मवाद और पुष्टिमार्गीय प्रेमलक्षणा भक्ति का प्रचार किया था। उन्होने ऐसे जीवन-दशन को प्रचलित किया, जो मानवीय साधनो की अपेक्षा भगवद् अनुग्रह को प्रधानता देता है।

श्री वल्लभाचार्य जी अपनी देशव्यापी यात्राओ के प्रसग मे दो बार पहले भी मथुरा मडल मे जा चुके थे। एक बार वे स १५५० मे वहा गये थे, जब उन्होने दिल्ली के सुलतान सिकदर लोदी की मजहबी तानाशाही से उत्पीडित मथुरा वासियो को कुछ धार्मिक सुविधाएँ दिलाई थी। उस समय सूरदास सीही क्षेत्र मे थे। किंतु जब वे वहाँ से मथुरा आये, तब उन्होने ब्रज-वासियो द्वारा श्री आचाय जी की धार्मिक महत्ता को सुना था। दूसरी बार श्री आचाय जी स १५५६ मे मथुरा गये थे। तब उन्होने गोवधन की गिरिराज पहाडी पर श्रीनाथ जी के देव स्वरूप को प्रतिष्ठित कर उनकी सेवा-पूजा की आरभिक व्यवस्था की थी। उस समय सूरदास जी गऊघाट पर निवास करते थे किंतु तब उन्हे श्री आचाय जी का कोई समाचार नही मिला था।

अब की वार वे अपनी तृतीय यात्रा की समाप्ति के अनतर स १५६७ के आरभ मे उधर आये थे। तब तक वे गृहस्थाश्रम मे प्रवेश कर चुके थे। उस अवसर पर उनके साथ उनकी युवती बधू और कुछ निजी शिष्य-सेवक थे। वे गिरिराज जी की परिक्रमा श्रीनाथ जी के दशन और उनकी सेवा-पूजा को सुव्यवस्थित करने के उद्देश्य से गोवधन जा रहे थे। जब वे गऊघाट पर आकर रुके, तभी सूरदास को उनके आगमन का समाचार मिल गया। वे उनसे भेट करने को बडे उत्सुक हुए। उधर श्री वल्लभाचार्य जी को भी गऊघाट निवासियो से ज्ञात हुआ कि वहाँ सूर स्वामी नामक एक अधे भक्तजन निवास करते है, जो बडी सुदर रीति से गाते है। आचार्य जी को उनका गायन सुनने की इच्छा हुई। उसी समय सूरदास अपने कुछ शिष्य-सेवको के साथ श्री आचाय जी के डेरा मे आये। उन्होने श्री वल्लभाचाय जी को साष्टाग प्रणाम किया। आचाय जी ने उनसे कहा—'सूर! कुछ भगवद् यश का गायन करो।

सूरदास ने गायन आरभ किया। उस समय मध्याह्न का समय था, अतएव उस काल के 'सारग राग मे उन्होने दो पद गाये। उन दिनो सूरदास की जैसी मनोदशा थी उसी के अनुरूप उन्होने पद-गान किया था। उसमे उन्होने अतिशय दीनता प्रकट करते हुए भगवान् श्रीहरि से अपने उद्धार की आकुलतापूण प्रार्थना की थी। उक्त पदो के कुछ अश इस प्रकार हैं,—

१ हरि, हौं सब पतितनि कौ नायक।
को करि सकै बराबरि मेरी, और नहीं कोउ लायक॥
जो प्रभु अजामील कौं दीन्हौ, सो पाटौ लिखि पाऊ।
तौ बिस्वास होइ मन मेरैं, औरौ पतित बुलाऊँ॥
होडा-होडी मनहिं भावते, किए पाप भरि पेट।
ते सब पतित पाँय-तर डारौं, यहै हमारी भेंट॥
बहुत भरोसौ जानि तुम्हारौ, अघ कीन्हे भरि भाँडौ।
लीजै वेगि निबेरि तुरत ही, 'सूर' पतित कौ टाँडौ॥१४६॥

२ प्रभु ! हौ सब पतितनि कौ टीकौ ।
और पतित सब दिवस चारि के, हौं तौ जन्मत ही कौ ।।
कोउ न समरथ अघ करिवे कौं, खेंचि कहत हौं लीकौ ।
मरियत लाज 'सूर' पतितनि मे, मोहू तै को नीकौ ! ।।१३८।।

श्री वल्लभाचार्य जी सूरदास के इन पदो की स्वर-लहरी एव गायन शैली से तो बडे प्रभावित हुए, किंतु उनमे वर्णित अधीरता पूर्ण निराशा की भावना को उन्होने पसद नही किया । वे सूरदास को सान्त्वना देते हुए बोले —'तुम तो 'सूर' (वीर) हो, फिर इस प्रकार क्यो गिडगिडाते हो ? अधीरता और निराशा का कथन करने की अपेक्षा भगवद्-लीला का गान करो । सूरदास ने कहा,—'महाराज ! मैं भगवद्-लीला नही जानता हू ।' तब आचाय जी ने उनसे कहा,—'अच्छा, हम तुम्हे समझावेंगे ।'

सूरदास के कुछ अन्य पदो मे भी उक्त प्रसग के अनुकूल कथन हुआ है । ऐसे दो पदो के कुछ अश यहाँ प्रस्तुत है —

१ श्री वल्लभ ! अब की वेर उवारौ ।
'सूर' अधम को कहू ठौर नहिं, बिनु एक सरन तुम्हारौ ।।
२ अब मोहि सरन राखियै नाथ !
कृपा करी जो गुरु जन पठए बह्यौ जात गह्यौ हाथ ।।
अभय-दान दै, अपुनौ कर धरि, 'सूरदास' के माथ ।।२०८।।

दीक्षा-प्राप्ति—सूरदास की प्राथना पर श्री वल्लभाचाय जी ने उन्हे अपने पुष्टिमार्गीय भक्ति सप्रदाय मे दीक्षित किया । इसके लिए उन्होने पहले अष्टाक्षर मत्र द्वारा सूरदास को 'नाम' सुनाया । फिर 'ब्रह्म मबध' के मत्र द्वारा उनसे 'समपण' कराया[1] । इस प्रकार उनकी दीक्षा-विधि सानद सम्पन्न हुई । उसके पश्चात्

(१) वल्लभ सप्रदाय मे 'नाम' और 'समपण' दो प्रकार की दीक्षा-विधियाँ प्रचलित हैं । इनमे 'नाम दीक्षा' सामान्य है, और 'समपण दीक्षा' विशिष्ट है । नाम दीक्षा के लिए गुरु दीक्षार्थी के कान मे 'श्रीकृष्ण शरण मम' इस अष्टाक्षर मत्र को तीन बार सुनाते हैं । इसे 'नाम सुनाना' कहा गया है । समर्पण दीक्षा मे दीक्षार्थी को ससार की अहता-ममता का परित्याग कर परब्रह्म श्रीकृष्ण के चरणो मे अपना सर्वस्व समर्पण करने का सकल्प लेना होता है । इस दीक्षा की प्राप्ति करने वाले को विशेष प्रकार के रहन-सहन और आचार-विचार का पालन करना पडता है । समर्पण मत्र का आशय इस प्रकार है,—'मै श्रीकृष्ण की शरण मे हू । सहस्रो वर्षों से मेरा श्रीकृष्ण से वियोग हुआ है । वियोग-जन्य ताप और क्लेश से मेरा आनद तिरोहित हो गया है अत मै भगवान् श्रीकृष्ण को देह, इद्रिय, प्राण, अत करण और उनके धर्म, स्त्री, गृह, पुत्र, वित्त और आत्मा सब कुछ अर्पित करता हू । हे कृष्ण ! मैं आपका दास हू, मैं आपका ही हू ।'

श्री आचाय जी ने भागवत-दशम स्कध की स्वरचित 'अनुक्रमणिका' के आधार पर सूरदास को श्रीकृष्ण-लीला का मर्म समझाया। उससे उनके हृदय मे लीला-तत्व की स्फूर्ति हुई, और उन्हे भगवान श्रीकृष्ण की समस्त लीलाओ का आभास होने लगा। फलत उनके हृदय की व्याकुलता एव अशाति दूर हो गई, और वे अलौकिक सुख तया शाति का अनुभव करने लगे। श्री वल्लभाचार्य जी ने सूरदास को स १५६७ की वैशाख कृ ११ को साप्रदायिक दीक्षा दी थी।

उसी अवसर पर सूरदास ने अपने समस्त शिष्य-सेवको को भी श्री आचाय जी से दीक्षा दिला दी थी। उस प्रसग से सबधित उनके पदो मे से एक पद का कुछ अश इस प्रकार है,—

प्रभु! मै सब पतितनि कौ राजा।
चल्यौ सबेरौ, आयौ अबेरौ, लै कर अपने साजा॥
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे मिलिहै, देखत जम दल भाजा॥

श्री वल्लभाचाय जी ने भागवत के सार रूप मे रचे जाने वाले अपने 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम'[1] ग्रथ का जो सूक्ष्म ज्ञान सूरदास को कराया था, उससे उनके हृदय मे समस्त भागवत के लीला-तत्त्व की स्फूर्ति होने लगी। फलत वे श्रीमद् भागवत के आधार पर पद-रचना कर उनका गायन करने को उत्साहित हुए। श्री वल्लभाचार्य जी के उपदेश से सूरदास की साधना का रूप ही बदल गया था। तब उन्हे कृष्ण लीला के सरस पदो की तुलना मे अपने पूर्व रचित निराशाजन्य दास्य भाव के पद अत्यत नीरस जान पडने लगे।

यहाँ यह उल्लेखनीय है, यदि सूरदास श्री वल्लभाचाय जी के सपक मे न आये होते, तब वे दास्य भाव के पद-गायक एक विरक्त मत तथा सगीतज्ञ के रूप मे ही प्रसिद्ध हुए होते। उस स्थिति मे उनके द्वारा श्रीकृष्ण-लीलाओ के कीर्तन गान के लिए रचित उन असख्य सरस पदो की रचना न हुई होती, जिन्होने उन्हे उपासना, भक्ति, साहित्य एव सगीत के क्षेत्रो मे अमरता प्रदान की है।

---

(१) **'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' श्री वल्लभाचाय जी कृत एक साप्रदायिक रचना है। इसमे भागवत के द्वादश स्कधों मे आये हुए श्रीहरि के शुद्धाद्वैत सिद्धात प्रतिपादक एक सहस्र नामो का कथन किया गया है। श्री आचार्य जी ने सूरदास को दीक्षित करने के कई वर्ष पश्चात् उक्त रचना को व्यवस्थित किया, और उसे अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री गोपीनाथ जी को पाठार्थ दिया था। उस ग्रथ की पूर्ति का काल स १५८० के लगभग है। सूरदास ने इससे प्रेरित होकर उसी की पद्धति पर अपने ग्रथ 'सूर सारावली' की रचना की थी।**

'गऊघाट' से गोकुल को—श्री वल्लभाचार्य तीन दिन तक गऊघाट पर रहे थे। उस अल्पावधि मे ही सूरदास श्री आचाय जी के पूणतया अनुगत हो गये थे। तीन दिन पश्चात् जब आचार्य जी ने अपने परिकर के साथ ब्रजभूमि की ओर प्रस्थान किया, तब उन्होने सूरदास को भी अपने साथ ले लिया था। वे सब गऊघाट से चल कर गोकुल मे जाकर रुके। तभी सूरदास ने गाया,—

ब्रज भूमि मोहिनी मैं जानी।
मोहनि नारि गोकुल की ठाडीं, बोलत अमृत बानी ॥

जिस समय सूरदास को दीक्षित किया गया था, उस काल मे श्री आचाय जी श्रीमद् भागवत की 'सुबोधिनी' नामक टीका और भागवत के सार-समुच्चय रूप 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' की रचना मे प्रवृत्त थे। उन्होने इनका सूक्ष्म तत्त्व भी सूरदास को समझा दिया था। उससे अनुप्राणित होकर सूरदास ने भागवत-दशम स्कध की सुबोधिनी' के मगलाचरण वाची श्लोक,—'नमामि हृदये शेषे लीलाक्षीराब्धि शायिनम्। लक्ष्मी सहस्र लीलाभि सेव्यमान कलानिधिम्[1] ॥' पर आधारित एक पद की तत्काल रचना करते हुए उसे 'देव गधार' राग मे गाकर श्री आचार्य जी को सुनाया था। उस पद का कुछ अश इस प्रकार है,—

चकई री, चलि चरन-सरोवर, जहाँ न प्रेम-वियोग।
जहँ भ्रम-निशा होति नहिं कबहू, सोइ सायर सुख जोग ॥
जहँ श्री सहस्र सहित नित क्रीडत, सोभित 'सूरजदास'।
अब न सुहात विषय-रस-छीलर, वा समुद्र की आस ॥

लीला-गान का उपक्रम—इस पद को सुन कर श्री आचाय जी बडे प्रसन्न हुए। उन्होने समझा कि सूरदास को दशम स्कध का स्फुरण हो गया है, जिससे उनके हृदय मे कृष्ण-लीला का अपार सागर उमड पडा है! उन्होने सूरदास से नदालय की लीला का गायन करने को कहा। तब सूरदास ने नद महोत्सव का एक बडा सुदर पद 'आसावरी' राग मे गाया। उस पद का कुछ अश इस प्रकार है, —

ब्रज भयौ महरि कै पूत, जब यह बात सुनी।
सुनि आनदे सब लोक, गोकुल गनक-गुनी ॥
ग्रह-लगन-नषत-पल सोधि, कीन्हीं बेद-धुनी।
ब्रज पूरन पूरे पुन्य, रोपी सुथिर थुनी ॥

---

(१) **इस श्लोक का आशय इस प्रकार है—'हृदय रूपी शेष पर लीला रूपी क्षीर-सागर मे शयन करते हुए, लक्ष्मी तथा सहस्रो द्वारा सेवित जो कलानिधि हैं, उनको मैं नमस्कार करता हू।'**

सुनि धाई सब ब्रजनारि, सहज सिंगार किए।
तन पहिरे नूतन चीर काजर नैन दिए।।
कसि कचुकी, तिलक लिलार, सोभित हार हिए।
कर-ककन, कचन-थार, मगल-साज लिए।।
ते अपने-अपने मेल, निकसीं भाँति भली।
मानो लाल मुनैयनि पाँति, पिंजरन तोरि चली।।
वे गावें मगल गीत, मिलि दस-पाच अली।
मानो भोर भए रवि देखि, फूली कमल-कली।।
सुनि ग्वालनि गाइ वहोरि, बालक बोलि लए।
गुहि गुजा घसि बनधातु, अगनि चित्र ठए।।
सिर दधि-माखन के माट, गावत गीत नए।
डफ, झाझ मृदग बजाइ, सब नँद-भवन गए।।
मिलि नाँचत करत किलोल, छिटकति हरद-दही।
मनु बरषत भादौ मास, नदी घृत-दूध बही।।
जब जहाँ-तहाँ चित जाइ, कौतुक तहीं-तहीं।
सब आनँद-मगन गुवाल काहू बदत नहीं।।
पुर घर-घर भेरि-मृदग, पटह-निसान बजे।
घर बारनि बदनवार, कचन कलस सजे।।
ता दिन तें बै ब्रज लोग, सुख-संपति न तजें।।
सुनि 'सूर' सबन की यह गति, जो हरि-चरन भजें।।६४२।।

'वार्ता' से ज्ञात होता है कि सूरदास ने गोकुल मे वहा की भावना के अनुकूल श्रीकृष्ण की शैशव-लीला के कतिपय पदो का गायन किया था। उनमे से एक पद श्री आचाय के उपास्य ठाकुर श्री नवनीतप्रिय जी के कीर्तन का भी था। वह प्रसिद्ध पद इस प्रकार है —

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुन चलत रेनु तन मडित, मुख दधि लेप किए।।
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन-तिलक दिए।
लट लटकनि मनु मत्त मधुपगन, मादक मधुहिं पिए।।
कठुला कठ, वज्र केहरि-नख, राजत रुचिर हिए।
धन्य 'सूर' एकौ पल इहिं सुख, का सत कल्प जिए।।७१७।।

गोकुल से गोवर्धन—श्री वल्लभाचाय जी कुछ समय तक गोकुल मे रहे थे। फिर वे सूरदास सहित अपने सभी शिष्य-सेवको को लेकर गोवधन चले गये। वहा पर उन्होने श्रीनाथ जी की सेवा को सुव्यवस्थित एव उन्नत करने का आयोजन किया।

भगवद्-सेवा के प्रमुख अग 'कीर्तन' का तब तक समुचित प्रबध नही हुआ था। एक कृषिजीवी ग्रामीण भक्त-जन कुभनदास अपने अवकाश के समय मे श्रीनाथ जी का कीर्तन करते थे। श्री आचार्य जी ने उसे व्यवस्थित करने के लिए वह सेवा सूरदास को सोपी। वे प्रात काल से सायकाल तक श्रीनाथ जी के मदिर मे उपस्थित रह कर वहा की प्राय सभी झाकियो मे कीतन करने लगे। कुभनदास पूववत् अपनी सुविधा के अनुसार कीतन करते हुए उन्हे सहयोग देते थे।

कीर्तन-गान का आरभ—'वार्ता' से ज्ञात हाता है, सूरदास ने श्रीनाथ जी की कीतन-सेवा के लिए जिस पद का सव प्रथम गायन किया था, वह दीनता सूचक 'विज्ञप्ति' का था। वह पद इस प्रकार है,—

> **अब मै नाच्यौ बहुत गुपाल।**
> **काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कठ विषय की माल॥**
> **महामोह के नूपुर बाजत, निदा सब्द रसाल।**
> **भ्रम भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असगत चाल॥**
> **तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल।**
> **माया कौ कटि फटा बाँध्यौ, लोभ तिलक दिया भाल॥**
> **कोटिक कला काछि दिखराई, जल-थल सुधि नहि काल।**
> **'सूरदास' की सबै अविद्या, दूरि करौ नँदलाल॥**

इस पद से ज्ञात होता है, कि तब तक सूरदास अपने को अविद्या के माया-जाल मे फँसा हुआ समझ कर हीनता की भावना से मुक्त नही हो सके थ। श्री आचाय जी ने उन्हे आश्वस्त करते हुए कहा– सूरदास! श्रीनाथ जी की शरण मे आते ही तुम्हारी समस्त अविद्या दूर हो गई। अब तुम निश्चित होकर भगवद्–लीला का गायन करो, ताकि तुम्हारी भक्ति-भावना की निरतर उन्नति होती रहे। तुम इस विश्वास के साथ श्रीनाथ जी का प्रेमपूवक कीतन करते रहो कि तुम पर उनका पूण अनुग्रह है।'

सूरदास के गोवधन–आगमन और वहाँ स्थायी रूप से निवास करने के आयोजन के साथ उनके 'आरभिक जीवन' की प्राय ३३ वर्षीय अवधि समाप्त हुई। उसके पश्चात् श्रीनाथ जी की कीर्तन–सेवा मे योग देने के पुण्य दिवस से उनके 'उत्तर जीवन' की दीघकालीन ७२ वर्षीय अवधि का शुभारभ हुआ। सूरदास ने स १५६७ के अत मे अथवा स १५६८ के आरभ म गोवधन मे स्थायी निवास कर श्रीनाथ जी की कीर्तन–सेवा का उत्तरदायित्व सँभाला था। उसे वे अपने अतिम काल स १६४० तक अत्यत निष्ठा पूर्वक करते रहे थे।

आगामी पृष्ठो मे उनके 'उत्तर जीवन' की महत्त्वपूण गति-विधिया का सक्षिप्त विवरण लिखा गया है।

उत्तर जीवन (स० १५६८ से स० १६४० तक)—

गोवर्धन-निवास—गोवधन के निवास-काल मे सूरदास का स्थायी आवास-स्थल श्रीनाथ जी के मदिर से कुछ दूर परासौली गाँव के चद्र सरोवर पर था। वल्लभ सप्रदाय की मान्यता है कि परासौली–चद्र सरोवर का क्षेत्र सारस्वत कल्प का आदि वृ दावन हे, जहाँ भागवत मे वर्णित् शरद ऋतु का महारास हुआ था। उस स्थान के धार्मिक महत्व के कारण ही सूरदास ने उसे अपना आवास-स्थल बनाया था। चद्र सरोवर के तटवर्ती एक कुटी मे वे रहते थे। वहा से प्रति दिन प्रात काल वे श्रीनाथ जी के मदिर चले जाते थे, जहाँ प्राय सभी झाँकियो मे वे कीर्तन किया करते थे। सायकाल को वे अपने आवास-स्थल मे वापिस आकर शयन करते थे। उनकी दिनचर्या का वह क्रम उनके अतिम काल तक नियमित रूप से चलता रहा था।

'वार्ता से ज्ञात होता है कि एक बार श्रीनाथ जी के साथ मथुरा और कभी-कभी श्री नवनीतप्रिय जी के कीतन के लिए गोकुल जाने के अतिरिक्त वे गोवर्धन छोड कर कही नही गये थे। ब्रज मडल से बाहर तो क्या, ब्रज के किसी धार्मिक स्थल मे, यहाँ तक कि वर्तमान वृ दावन मे भी, उनके जाने का कोई निश्चित प्रमाण नही मिलता है। उनके पदो मे जहाँ वृ दावन का कथन हुआ है, वहाँ उनका अभिप्राय परासौली–चद्र सरोवर से है। जैसा पहिले लिखा गया हैं, वल्लभ सप्रदाय की मान्यता के अनुसार परासौली–चद्रसरोवर का क्षेत्र सारस्वत कल्प का 'आदि वृ दावन' है, और वर्तमान वृ दावन वैवश्वत् कल्प के 'परवर्ती वृ दावन' का प्रतिनिधि है। सारस्वत कल्पीय वृ दाबन मे शरद ऋतु का और वैवश्वत् कल्पीय वृ दावन मे वसत ऋतु का रास सपन्न होने की मान्यता है।

'सूरसागर' नाम की प्रसिद्धि—श्री वल्लभाचाय जी द्वारा भागवतोक्त 'लीलाक्षीराब्धि' की स्थापना के कारण सूरदास के हृदय मे लीला–पुरुषोत्तम की अनत लीलाओ का अपार सागर उमड पडा था, जिसकी बहुविध भाव-लहरे उनके पदो के रूप मे तरगित हुई है। सूर के हृदयस्थ लीला-सागर के कारण श्री आचाय जी ने उन्हे 'सागर' की उपाधि प्रदान की थी। वे उन्हे 'सूर सागर' कहा करते थे। वह नाम इतना प्रसिद्ध हुआ कि कालातर मे सूर की रचनाओ को भी 'सूर सागर' कहा जाने लगा। जब आचार्य जी सूरदास को 'सूर सागर' नाम से सबोधित करते थे, तब वे विनम्रता पूर्वक कहते थे, यदि उनके जैसा पापी व्यक्ति 'सागर' है, तब इसमे विकार रूपी जल ही भरा हुआ है। उनके तत्सबधी पद का कुछ अश इस प्रकार है.—

माधौ जू, मोतें और न पापी।
सागर 'सूर' विकार जल भर्‌यौ, वधिक अजामिल बापी ॥१४०॥

श्री वल्लभाचार्य जी का तिरोधान—श्री आचाय जी का तिरोधान ५२ वष की आयु मे स० १५८७ मे हुआ था। सूरदास स० १५६७ से लेकर स० १५८७ तक, अर्थात् २० वर्षों तक श्री आचाय जो से लाभान्वित हुए थे। तत्पश्चात् उन्हे श्री वल्लभाचाय जी के पुत्रो के सान्निध्य मे रहने का सुयोग प्राप्त हुआ।

श्री बिट्ठलनाथ जी का आचार्यत्व—श्री वल्लभाचाय जी के दो पुत्र थे, सवश्री गोपीनाथ जी और विट्ठलनाथ जी। आचाय जी के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथ जी वल्लभ सप्रदाय के आचार्य हुए थे। वे बडे शात स्वभाव के व्यक्ति थे। उनका अधिकाश समय स्वाध्याय, भगवद् भजन और सुदूरवर्ती यात्राओ मे व्यतीत होता था। सप्रदाय का सचालन तथा श्रीनाथ जी के मदिर की व्यवस्था उनके छोटे भाई विट्ठलनाथ जी करते थे। स० १५६६ मे गोपीनाथ जी का असामयिक देहावसान हो गया। कुछ समय पश्चात् उनके एक मात्र बालक पुत्र पुरुषोत्तम जी की भी अकाल मृत्यु हो गई। उस विचित्र परिस्थिति मे श्री विट्ठलनाथ जी आचार्य हुए थे।

पुष्टिमाग की प्रगति और श्रीनाथ जी की सेवा-व्यवस्था—श्री विट्ठलनाथ जी अत्यत व्यवहार-कुशल, कमठ और सूझ-बूझ वाले महानुभाव थे। उन्होने आचाय होने के अनतर पुष्टिमाग का विधि पूवक सगठन किया, और उसकी प्रगति के अनेक उपाय किये। उनके प्रयत्न से तत्कालीन कृष्णोपासक भक्ति सप्रदायो म इसे सर्वोपरि माना जाने लगा था। श्री विट्ठलनाथ जी न श्रीनाथ जी की सेवा-प्रणाली को भी सागोपाग व्यवस्थित कर उसे पुष्टिमार्गीय सेवा-भावना के क्रियात्मक रूप मे विकसित किया था। उसे सुनियोजित एव सुव्यवस्थित रूप मे कार्यान्वित करने के लिए उन्होने उसके तीन प्रमुख अग निर्धारित किये, जिन्हे 'शृगार', 'भोग' और 'राग' के नाम से विशद रूप मे प्रचारित किया। लौकिक दृष्टि से शृगार, भोग और राग,—ये तीनो ही सासारिक व्यसन हैं, जिनसे बचना ससारी जाव के लिए बडा कठिन होता है। पुष्टिमार्गीय आचार्यों ने उन तीनो व्यसनो के अनिष्टकारी प्रभाव से जीव को छुटकारा दिलाने के लिए उन्हे कृष्ण-सेवा मे लगा दिया। उनका मत है, कृष्ण-सेवा के ससर्ग से उक्त व्यसनो का विकृत रूप शुद्ध हो जाता है, और वे जीव का अनिष्ट करने के बजाय उसके कल्याण के साधन बन जाते है।

शृगार' का अभिप्राय श्रीकृष्ण के स्वरूप को सुदर वस्त्राभूषणो से सज्जित एव अलकृत करने से है। उससे चित्त का आकषण होकर उसका निरोध होता है। उसके लिए उपास्य स्वरूप के वस्त्राभूषणो तथा साज-सज्जा की व्यवस्था की गई है। 'भोग' का अभिप्राय श्रीकृष्ण के स्वरूप के लिए नाना प्रकार के भोज्य पदार्थो का समर्पण करना है। समर्पित पदार्थों को प्रसाद' कहा जाता है। इससे भक्त-जन अपनी क्षुधा की निवृत्ति कर भगवद्-भजन मे बिना किसी बाधा के लग सकते हैं। 'भूखे

भजन न होइ गोपाला'–की लोकोक्ति प्रसिद्ध है। 'राग' का अभिप्राय है, नाना प्रकार के वाद्य यन्त्रो द्वारा विविध राग-रागनियो मे ताल, स्वर और लय से श्री कृष्ण का गुण गान। इसे 'कीतन' भी कहते है। इससे मन एकाग्र होकर उसका निरोध होता है।

श्री विट्ठलनाथ जी ने पुष्टिमार्गीय सेवा के उन तीनो प्रमुख अगो को सुव्यवस्थित एव कलात्मक रूप प्रदान कर उनका सुनियोजित विधि से विकास विस्तार एव प्रचार किया था। 'राग' सेवा को समुचित रूप मे सपन्न करने के लिए उन्होने श्रीनाथ जी की आठो झाकियो के उत्सवो मे समय और ऋतुओ के राग एव रस के अनुसार कीर्तन-गान की प्रणाली प्रचलित की थी। उसके क्रिया वयन के लिए उन्होने पुष्टि सप्रदाय के तत्कालीन साहित्य संगीत निष्णात आठ भक्त जनो की एक कीतन-मडली का गठन किया था। बहुसख्यक भक्त-जनो मे से उन आठो के मनोनयन द्वारा मानो श्री विट्ठलनाथ जी ने उन पर अपने आशीर्वाद की छाप लगायी थी। इसलिए वे 'अष्टछाप' के नाम से प्रसिद्ध हुए थे। सूरदास जी उस अष्टछाप मडली के मुखिया थे, अत इस पर कुछ विस्तार से लिखने की आवश्यकता है।

'अष्टछाप'—श्री विट्ठलनाथ जी द्वारा सगठित 'अष्टछाप की कीतन-मडली के आठो महानुभावो के नाम इस प्रकार है,—१–सूरदास, २–कुभनदास, ३–कृष्णदास, ४–परमानददास, ५–गोविंदस्वामी, ६–छीतस्वामी, ७–चतुर्भुजदास और ८–नददास। इनमे आरभ के चार श्री वल्लाभाचाय जी के और अतिम चार श्री विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे। उस मडली के गठन की प्रेरणा कदाचित श्री वल्लभाचाय जी को उनकी दक्षिण-यात्रा मे विजयनगर-नरेश कृष्णदेव राय की सुप्रसिद्ध साहित्य-सभा 'भुवन विजय' को देख कर हुई थी। उस सभा मे तेलुगु भाषा के आठ साहित्य महारथी थे, जिन्हे 'अष्ट दिग्गज' कहा जाता था। श्री वल्लभाचार्य जी अपने असामयिक तिरोधान के कारण वैसी मडली का गठन नही कर सके थे, किंतु श्री विट्ठलनाथ जी ने उसे परिष्कृत रूप मे सगठित किया था।

'अष्टछाप' के उन आठो महानुभावो के सबध मे मे पुष्टि सप्रदाय को मान्यता रही है कि वे भगवान् श्रीकृष्ण के नित्य अतरग सखा है, जो उनकी चिरतन लीलाओ मे सदैव उनके साथ रहते है। गोलोक धाम मे वे तोक, कृष्ण, श्रीदामा सुवल, अर्जुन, विशाल, ऋषभ, भोज नामो से स्थित है। (भागवत, दशम २२-३१)। साप्रदायिक मान्यता के अनुसार जब गोवधन मे श्रीनाथ जी का प्राकट्य हुआ, तब उनकी सेवा एव लीला-गान के लिए उनके सखा भी सूरदासादि के रूप मे इस भू-तल पर अवतरित हुए थे। इसका उल्लेख 'श्री गोवधननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता' (पृष्ठ २७) मे इस प्रकार हुआ हैं,—'जब श्री गोवर्धननाथ जी प्रकट भए, तब अष्टसखा हू भूमि मे प्रगट भए, अष्टछाप रूप होइकैं सब लीलान कौ गान करत भए।' इस प्रकार जहाँ

अष्टछाप' के नाम से उनकी साहित्य-सगीत विषयक विशेषताओ का बोध होता है, वहाँ 'अष्ट सखा' के नाम से उनके साप्रदायिक महत्त्व पर प्रकाश पडता है ।

अष्टछापी महानुभावो के लीलात्मक स्वरूपो की दो प्रकार की स्थिति मानी गई है । वे दिन मे श्रीनाथ जी के सखा रूप से उनकी बन लीलाओ के साहचय का सुख प्राप्त करते थे, और रात्रि मे श्री स्वामिनी जी की सखी रूप से उनकी निकुज-लीलाओ के दशन का आनद लेते थे । सूरदास का लीलात्मक सखा रूप 'कृष्ण सखा' और लीलात्मक सखी रूप 'चपकलता सखी' माना गया है ।

सूरदास सहित सभी अष्टछापी महानुभावो की सख्य भावना इतनी प्रगाढ थी कि उन्हे अहर्निश श्रीनाथ जी के सान्निध्य का आभास होता रहता था। वे अनुभव करते थे कि श्रीनाथ जी सदैव उनके साथ रह कर उनसे वार्तालाप करते हैं, नाना प्रकार के खेल खेलत ह, यहा तक कि हास्य-विनोद भी करते है । सूरदास को अपनी उपासना-भक्ति की अनुपमता, सेवा-भावना की प्रवीणता और साहित्य सगीत सबधी निपुणता के कारण 'अष्टछाप' मे सर्वोपरि स्थान प्राप्त हुआ था । वस्तुत उपासना, भक्ति, सेवा, साहित्य एव सगीत के क्षेत्रो मे 'अष्टछाप' को जो महत्त्व प्राप्त है, उसका अधिकाश श्रेय सूरदास को है ।

स्थापना का काल—'अष्टछाप' की स्थापना कब हुई इसके सबध मे विद्वानो मे कुछ मतभेद रहा है । वल्लभ सप्रदाय के इतिहास से ज्ञात होता है कि श्री विट्ठलनाथ जी ने स १६०२ मे श्रीनाथ जी की सेवा-विधि को व्यवस्थित एव विस्तृत करने का आयोजन किया था । उसी समय उन्होने 'अष्टछाप' की स्थापना का उपक्रम भी किया, किंतु उसके कुछ समय पश्चात् आचार्यत्व के प्रश्न पर उनका श्रीनाथ जी के मदिर के अधिकारी कृष्णदास से मतभेद हो गया था, जो स १६०७ मे तब समाप्त हुआ, जब श्री विट्ठलनाथ जी विधि पूवक आचाय हो गये थे । उसी सवत् मे नददास ने वल्लभ सप्रदाय की दीक्षा प्राप्त की थी । इस प्रकार 'अष्टछाप' की स्थापना के लिए अनुकूल परिस्थिति स १६०७ मे बन सकी थी । किंतु उसकी सम्यक् पूर्ति बाद मे उस समय हुई, जब नददास स्थायी रूप से गोवर्धन रहने लगे थे । 'नददास की वार्ता' से ज्ञात होता है कि श्री विट्ठलनाथ जी से दीक्षा लेने के अनतर कुछ समय तक वे सूरदास के सत्सग मे गोवधन मे रहे थे । फिर इन्हे अपने घर वापिस जाना पडा था । वहाँ कुछ काल तक गृहस्थ-जीवन व्यतीत करने के पश्चात् वे विरक्त होकर गोवर्धन आ गये थे, और स्थायी रूप से श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा करने लगे थे ।

जब तक नददास स्थायी रूप से गोवर्धन मे नही रहे थे, तब तक उनके बजाय श्री वल्लभाचार्य जी के एक सेवक विष्णुदास छीपा (विद्यमानता स १५६५ से १६५० के लगभग) ने श्रीनाथ जी का कीर्तन किया था । यही कारण है कि श्री द्वारकेश जी

के जिस छप्पय मे अष्टछापी आठो महानुभावो के लौकिक नामो के साथ उनके लीलात्मक नामो का भी कथन हुआ है, वहाँ नददास के स्थान पर विष्णुदास का नाम मिलता है[1]। नददास के आने पर विष्णुदास को गोकुल भेज दिया गया था, जहाँ वे श्री विट्ठलनाथ जी के आवास गृह के डयोढीवान हुए थे। 'विष्णुदास की वार्ता' से ज्ञात होता है कि वे ऐसे उद्भट विद्वान थे कि जब कोई शास्त्रार्थी पडित श्री विट्ठलनाथ जी से शास्त्र-चर्चा करने आता, तब वे डयोढी पर ही उसे सतुष्ट कर वापिस भेज देते थे।

सम्राट अकबर से भेंट—सूरदास के पद-गान की प्रसिद्धि दूर-दूर तक हो थी। उस काल के विख्यात गायक भी उनका गान सुनने के लिए गोवधन आते थे, और फिर उन्ही की शैली मे गायन करने का प्रयत्न करते थे। एक बार मुगल सम्राट अकबर के सुप्रसिद्ध गायक तानसेन ने सूरदास के एक पद का गायन उन्ही की शैली मे सम्राट के समक्ष किया था। वे उससे बडे प्रभावित हुए, और सूरदास से मिलने और उनका गायन सुनने का आयोजन करने लगे। उसी काल मे वे प्रशासनिक दौरा करते हुए मथुरा गये थे। सयोग से उस समय सूरदास मथुरा मे ही थे। फलत सम्राट अकबर ने वहाँ उनका गायन सुना था। उस अवसर पर सूरदास ने २५ चरणो का जो पद गाया था, वह 'सूर-पचीसी' के नाम से प्रसिद्ध है। उसका कुछ अश यहाँ दिया जाता है—

मन रे, माधव सो करि प्रीति।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह तू, छाँडि सबै बिपरीति ॥
भौंरा भोगी बन भ्रमै (रे), मोद न मानै ताप।
सब कुसुमनि मिलि रस करै (पै), कमल बँधावै आप ॥
सुनि परमिति प्रिय प्रेम की (रे), चातक चितवन पारि।
घन-आसा सब दुख सहै, (पै) अनत न जाँचै बारि ॥
देखो करनी कमल की (रे), कीन्हौं रवि सो हेत।
प्रान तज्यौ प्रेम न तज्यौ (रे), सूख्यौ सलिल समेत ॥
दीपक पीर न जानई (रे), पावक परत पतग।
तनु तौ तिहिं ज्वाला जर्‌यौ, (पै) चित न भयौ रस-भग ॥

---

१ सूरदास सो कृष्ण, तोक परमानद जानो।
कृष्णदास सो ऋषभ, छीतस्वामि सुबल बखानो ॥
अर्जुन कुभनदास, चत्रभुजदास विसाला।
विष्णुदास सो भोज, गोविंदहि श्रीदामाला ॥
अष्टछाप आठो सखा, 'श्री द्वारकेश' परमान।
जिनके कृत गुन-गान कर, निज जन होत सुथान ॥

मीन वियोग न सहि सकै (रे), नीर न पूछै बात ।
देखि जु तू ताकी गतिहिं (रे), रति न घटै तन जात ।।
सब रस कौ रस प्रेम है (रे), विषयी खेलै सार ।
तन-मन-धन जोवन खसै (रे), तऊ न मानै हार ।।
तैं जु रतन पायौ भलौ (रे), जान्यौ साधि न साज ।
प्रेम-कथा अनुदिन सुनै (रे), तऊ न उपजै लाज ।।
सदा सँघाती आपनौ (रे), जिय कौ जीवन-प्रान ।
सु तैं बिसार्‌यौ सहज ही (रे), हरि ईश्वर भगवान ।।
का जानै कैवाँ मुवौ (रे), ऐसैं कुमति कुमीच ।
हरि सौं हेत बिसारि कै (रे), सुख चाहत है नीच ।।
जो पै जिय लज्जा नहीं (रे), कहा कहौं सौ बार ।
एकहु आँक न हरि भजौ (रे), सुन सठ 'सूर' गँवार ।।३२५।।

उपर्युक्त पद को सुन कर सम्राट अकबर बडे प्रभावित हुए। 'वार्ता' मे लिखा है, उस समय सूरदास से सम्राट का गुण-गान करने को भी कहा था। किंतु सूरदास के मन मे भगवान् श्री कृष्ण के अतिरिक्त किसी व्यक्ति के लिए, यहा तक कि देशाधिपति अकबर के लिए भी, कोई स्थान नही था। अतएव उन्होने अपनी मन-स्थिति के स्पष्टीकरण के लिए एक पद का गायन किया, जो इस प्रकार है—

नाहिंन रह्यौ मन मे ठौर ।
नदनदन अछत, कैसै आनियै उर और ?
द्यौस जागत चलत चितवत, सुपन सोवत राति ।
हृदै तै वोह मदन-मूरति, छिन न इत-उत जाति ।।
कहत कथा अनेक ऊधौ ! लोक लोभ दिखाय ।
कहा कहौं, चित प्रेम पूरन, घट न सिंधु समाय ।।
स्याम गात, सरोज आनन, ललित गति, मृदु हास ।
'सूर' ऐसे रूप कारन, मरत लोचन प्यास ।।

उपर्युक्त पद मे वर्णित सूरदास की मनोदशा को सम्राट अकबर ने समझा, किंतु अतिम पक्ति के सबध मे उन्होने प्रश्न किया,—'सूरदास जी, तुम्हारे नेत्र है नही, फिर उन्हे रूप-दर्शन की प्यास किस प्रकार होती है ?' 'वार्ता' मे लिखा है, सूरदास ने उस प्रश्न का कोई उत्तर नही दिया, किंतु सम्राट अकबर जैसे गुणग्राही प्रबुद्ध नरेश का स्वत समाधान हो गया था। उन्होने सूरदास को सन्मानित एव पुरस्कृत करने की बडी चेष्टा की, किंतु उस सर्वस्व-त्यागी निस्पृह महात्मा ने उसे स्वीकार नही किया।

भेट का समय और स्थान—सूर-अकबर-भेट कब और कहाँ हुई थी, इसके सबध मे विद्वानो मे कुछ मत-भेद है। हमारे अनुसधान से वह ऐतिहासिक भेट स १६२३ २४ मे मथुरा मे सम्पन्न हुई थी। उस समय श्री विट्ठलनाथ जी द्वारका पुरी की यात्रा को गये थे। उनकी अनुपस्थिति मे उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरिधर जी श्रीनाथ जी के स्वरूप को गोवधन से मथुरा ले गये थे, और उन्हे अपने आवास-गृह 'सतघरा' मे विराजमान किया था। तब सूरदास भी उनका कीर्तन करने के लिए गोवधन से मथुरा गये थे। उस अवसर पर श्रीनाथ जी स० १६२३ की फाल्गुन कृ० ७ से स० १६२४ की वैशाख शु० १४—२ माह २२ दिन तक मथुरा मे रहे थे। उसी समय सम्राट अकबर ने सूरदास से भेट कर उनका गायन सुना होगा। डा० दीनदयाल गुप्त ने उक्त भेट का समय स० १६३६ के लगभग अनुमानित किया है, किंतु उस काल में सूरदास के मथुरा-आगमन का कोई निश्चित प्रमाण प्राप्त नही है। अतएव स० १६३६ की अपेक्षा स १६२३-२४ ही प्रामाणिक जान पडता है।

पद सकलन का आयोजन—'वार्ता' से ज्ञात होता है, सम्राट अकबर ने सूरदान के पदो को सकलित कराने का आयोजन किया था। उनके आदेश से सूर के पदो का वृहत् सकलन कराया गया, और उसे फारसी अक्षरो मे लिपिवद्ध किया गया। सूरदास के पदो की अनेक प्रतियाँ फारसी अक्षरो मे लिखी हुई मिली है, किंतु सम्राट अकवर द्वारा कराया हुआ वह सकलन अभी तक प्राप्त नही हुआ है। यदि वह कभी मिल गया, तव आरभिक सग्रह होने से वह बडा महत्वपूण होगा।

सूर-तुलसी मिलन—'दो सौ बावन वष्णवन की वार्ता' के अनुसार गोस्वामी तुलसीदास अष्टछापी नददास के बडे भाई थे। जब नददास स्थायी रूप से गोवधन मे निवास करते थे, तब उनसे मिलने के लिए तुलसीदास वहाँ गये थे। उसी समय उनका सूरदास से भी मिलना हुआ था। वे सूरदास कृत कृष्ण-लीला के पदो को सुन कर बडे प्रभावित हुए थे। बाद मे उन्होने सूरदास की शैली मे ही 'कृष्ण गीतावली' और 'गीतावली' नामक ग्रथो की रचना की थी। 'कृष्ण-गीतावली' मे लीला-पुरुषोत्तम कृष्ण की और 'गीतावली' मे मर्यादा-पुरुषोत्तम राम की विभिन्न लीलाओ का गेय पदो मे कथन किया गया है। इनके बाल लीला सबधी पद स्पष्ट रूप से सूर कृत तद्विषयक पदो से प्रभावित हैं।

मिलन का समय—सूर-तुलसी जैसे विख्यात महात्माओ का मिलन किस सवत् मे हुआ था, इसके सबध मे विद्वानो के विभिन्न विचार हैं। हमारे मतानुसार वह महत्त्वपूण भेंट स १६२६ के लगभग हुई थी। उस समय सूरदास अत्यत वृद्ध थे, और उनका यश रूपी सूय प्रखरता से आलोकित था। तुलसीदास तब प्रौढावस्था के थे। उनकी कीर्ति-कौमुदी तब तक समुचित रूप से प्रकाशित नही हुई थी।

सूर सागर की सरचना—सूरदास का महान् कृतित्व 'सूर सागर' कहलाता है। किंतु इसका यह नाम न तो स्वय सूरदास ने रखा था, और न उनके समय मे उक्त नाम का प्रचलन ही हो पाया था। जैसा पहले लिखा जा चुका है, सूरदास के व्यक्तित्व की गुणवत्ता एव कृतित्व की महत्ता के कारण श्री वल्लभाचाय जी ने उन्हे 'सागर' की उपाधि प्रदान की थी, जो सर्वथा सार्थक थी। जिस प्रकार सागर अत्यत विशाल, गभीर और अनत रत्नो का भडार होता है, उसी प्रकार सूरदास का व्यक्तित्व एव कृतित्व भी था। उनकी वह उपाधि उनके नाम के साथ सलग्न हो गई थी, और वे 'सूर सागर' कहे जाते थे। कालातर मे उनका कृतित्व भी 'सूर सागर' कहा जाने लगा था।

सूरदास जी अपने आरभिक जीवन मे वैराग्य एव दास्य सबधी विनय के पद गाया करते थे। जब वे स० १५६७ मे श्री वल्लभाचाय जी द्वारा पुष्टि सप्रदाय मे दीक्षित हुए तब उन्होने श्रीकृष्ण के लीला गान का आरभ किया। वे अपने अतिम काल स० १६४० तक नित्य नये पदो की रचना द्वारा श्रीनाथ जी के कीतन स्वरूप कृष्ण-लीला का गान करते रहे थे। इस ७२-७३ वर्ष की दीर्घावधि मे उन्होने 'सहस्रावधि' ही नही, 'लक्षावधि' पदो की रचना कर उनका गायन किया था। उनमे से अनेक पदो को या तो उनके सगी-साथियो ने कठस्थ कर लिया था, अथवा सप्रदाय के लिपिको ने उन्हे लिपिवद्ध कर दिया था। उन सब को कभी सकलित कर उन्हे सुव्यवस्थित रूप मे लिखा गया हो, इसका कोई पुष्ट प्रमाण नही मिलता है। सम्राट अकबर द्वारा सकलन कराये जाने का उल्लेख पहले किया जा चुका है। किंतु वह अभी तक प्राप्त नही हुआ। यदि वह कभी मिल गया, तब भी उसमे अधिक पद होने की सभावना नही है।

वास्तविकता यह है कि सूर के समस्त पदो को सकलित करने का कभी समुचित प्रयास ही नही किया गया था। उनके जितने भी सकलन प्रस्तुत हुए, वे लिपिको एव सकलयिताओ की अपनी अपनी रुचि और अपने-अपने साधनो के अनुसार थे। फलत वे आकार-प्रकार मे एक-दूसरे से भिन्न थे। उनमे से छोटे सकलनो को सूर के पद' अथवा 'सूर पदावली' कहा गया और बडे सकलन 'सूरसागर' कहे जाने लगे। इस तरह के दोनो सकलन अत्यधिक सख्या मे उपलब्ध है।

सूर कृत पदो के वृहत् सकलन भी दो प्रकार के मिलते है। एक उत्सव-झाकियो मे कीर्तन के लिए गाये हुए लीला-क्रम' के अनुसार है, और दूसरे हैं श्रीमद् भागवत के द्वादश स्कधो से सबधित 'कथा-क्रम' के अनुसार। इन दोनो को ही 'सूरसागर' कहा गया है। किंतु वास्तविकता की दृष्टि से 'लीला-क्रम' के वृहत् सकलन को ही 'सूरसागर' कहना उचित है।

अन्य कृतियो का प्रणयन—सूरसागर के अतिरिक्त सूरदास की कुछ अन्य कृतिया भी है, जिनमे 'सारावली' और 'साहित्य-लहरी' प्रमुख हैं। 'सारावली' की रचना बृहत् होली-गान के रूप मे पुष्टिमार्गीय भक्ति-सिद्धात एव सेवा-तत्त्व के निरूपणार्थं हुई है। अतएव यह एक सैद्धातिक ग्रथ है, और इसके प्रणयन की प्रेरणा सूरदास को श्री वल्लभाचाय जी कृत 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' से हुई थी। जिस प्रकार श्री आचार्य जी ने समस्त भागवत के सार रूप मे 'पुरुषोत्तम-सहस्रनाम' की रचना की है, उसी प्रकार सूरदास ने अपनी गाई हुई भागवतोक्त लीलाओ के सार रूप मे 'सारावली' को रचा है। इस दृष्टि से इसका यह नाम सवथा सार्थक हैं। इसमे जिस भक्ति-तत्व और लीला-भेद का सार सनिहित है, उसके सबध मे सूरदास ने कहा है,—

श्री वल्लभ गुरु 'तत्व' सुनायौ, 'लीला-भेद' बतायौ। (११०२)
ता दिन तें 'हरि-लीला' गाई, एक लक्ष्य पद बद।
ताकौ सार 'सूर' सारावलि, गावत अति आनद॥ (११०३)

इस ग्रथ की रचना का उपक्रम स १६०२ मे किया गया। उम समय सूरदास की आयु ६७ वर्ष की थी, और तभी उन्हे गुरु-कृपा से हरि लीला के दर्शन हुए थे। इसका उल्लेख 'सारावली' मे इस प्रकार हुआ है —

'गुरु प्रसाद होत यह दरसन, सरसठ बरस प्रवीन'।

'साहित्य लहरी' दृष्टकूट पदो की अत्यत दुर्बोध रचना हैं। इसमे भगवान श्रीकृष्ण की शृ गार-लीलाओ का काव्य-शास्त्रोक्त कथन किया गया है। लीला-रस के अधिकारी महानुभाव ही इसका वास्तविक आनद प्राप्त कर सकें, और अनधिकारी व्यक्ति इससे वचित रहे, इसलिए इसे दृष्टकूट पदो की दुर्बोध शैली मे रचा गया है। इस प्रकार की जटिल रचना करने मे सूरदास को अभूतपूव सफलता प्राप्त हुई है। उनके बहुसख्यक दृष्टकूट पद 'सूरसागर' मे भी मिलते हैं, जो 'साहित्य-लहरी' के पदो से भिन्न हैं। उनकी 'सारावली' मे भी कुछ दृष्टकूट छद है। इससे सिद्ध होता है कि 'सूरसागर' और 'सारावली' का रचयिता ही 'साहित्य लहरी' का भो प्रणेता है। वल्लभ सप्रदाय की मान्यता है कि सूरदास ने इसकी रचना नददास के लिए की थी।

सूरदास के नाम से प्रसिद्ध और भी अनेक छोटी-बडी रचनाएँ है। इनमे से अधिकाश सूरसागर मे से सकलित की गई हैं, अतएव वे स्वतत्र कृतियाँ नहीं है। कुछ स्वतत्र रचनाएँ भी प्रचलित है, किंतु वे या तो विवाद-ग्रस्त हैं, या अप्रामाणिक।

भक्ति का विकास—सूरदास मूल रूप मे एक निष्ठावान भक्त जन थे। काव्य और सगीत उनकी भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति के साधन थे। अपने सुदीर्घ जीवन-काल मे वे भक्ति-पथ पर निरतर अग्रसर रहे थे। फलत उनकी भक्ति-भावना का उत्तरोत्तर विकास होता गया था। आरभ मे उनकी भक्ति दास्य भाव की थी। जब वे वल्लभ सप्रदाय मे दीक्षित हो गये, तब वे क्रमश वात्सल्य, सख्य और दाम्पत्य

भावो मे लीन रहे थे। अपने अतिम काल मे वे अधिकतर राधा-भाव मे तल्लीन रहा करते थे। श्रीनाथ जी का कीर्तन करते समय उनकी स्थिति भाव-समाधि की सी हो जाती थी। वे महामुनि व्यास जी की समाधि-भाषा का रसानुभव करने लगते थे। तब उनका हृदयस्थ लीला-सागर उनकी वाणी द्वारा प्रवाहित होकर समस्त श्रोताओ एव दर्शको को आनद-रस मे निमग्न कर देता था।

आयुष्य और उपस्थिति-काल— सूर कृत विशाल पद साहित्य और पुष्टि-मार्गीय वाङ्मय से ज्ञात होता है कि सूरदास ने बहुत बडी आयु प्राप्त की थी, और वे दीर्घ काल तक इस भू-तल पर उपस्थित रहे थे। उनकी रचनाओ के अत साक्ष्य से इसकी पुष्टि होती है। अपने कई पदो मे उन्होने तीनो पन,—बाल्य काल, यौवन और बुढापा को पार करने का उल्लेख इस प्रकार किया है,—

१ विनती करत मरत हौं लाज।
तीनो पन भरि ओर निबाह्यौ, तऊ न आयौ बाज ॥६६॥

२ तीनौ पन मै ओर निबाहे, इहै स्वाग कौ काछै।
'सूरदास' कौ यहै बडौ दुख, परत सबनि के पाछै ?॥

३ तीनौं पन ऐसै ही खोए, केस भए सिर सेत।
आँखिन अध, स्रवन नहिं सुनियत, थाके चरन समेत ॥२६६॥

उनके निम्नाकित पद मे वृद्धावस्था के अभिशाप रूपी दयनीय शारीरिक दशा का मार्मिक कथन किया गया है,—

अब मैं जानी, देह बुढ़ानी।
सीस-पाउँ-कर कह्यौ न मानत, तन की दसा सिरानी ॥
आन कहत, आनै कहि आवत, नैन-नाक बहै पानी।
मिटि गई चमक-दमक अँग-अँग की, मति अरु दृष्टि हिरानी ॥
नाहिं रही कछु सुधि तन मन की, भई जु बात बिरानी।
'सूरदास' अब होत बिगूचनि, भजि लै सारँग-पानी ॥३०५॥

यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सूरदास अत्यत वृद्धावस्था तक जीवित रहे थे। अब यह विचार करना है कि उनके उपस्थिति-काल की अवधि क्या है। इसके लिए श्रीनाथ जी के मदिर के अधिकारी और अष्टछाप के वरिष्ठ भक्त-कवि कृष्णदास कृत बसत-खेल के एक पद का कुछ अश यहाँ दिया जाता है,—

खेलत बसत वर विटठलेस राय। निज सेवक सुख देखत अघाय ॥
'घनस्याम' धाय फेंटन भराय। सब बालक खेलत एक भाय ॥
तहाँ सूरदास नाँचत हैं आय। परमानद घोरि गुलाल लाय ॥
सब अपुन मनोरथ करत धाय। तहाँ 'कृष्णदास' बलिहारी जाय ॥

पूर्वोक्त पद मे गो० श्री विट्ठलनाथ जी और श्री घनश्याम जी सहित उनके सातो बालकों के साथ सूरदास आदि आठो कीतनकारो द्वारा बसत खेलने का कथन हुआ है। श्री घनश्याम जी गो० श्री विट्ठलनाथ जी के सातवे और अतिम पुत्र थे। उनका जन्म स० १६२८ मे हुआ था। यदि वसत खेलने के समय उनकी आयु कम से कम १० वर्ष की ही मानी जाय, तब भी सूरदास जी की विद्यमानता स० १६३८ तक जानी जा सकती है। अब 'ज्यौनार' के एक पद का कुछ अश यहा प्रस्तुत है,—

भोजन भयौ भावते मोहन। तातौइ जेंइ जाहु गो-दोहन ॥
खीर, खाँड, खीचरी सँवारी। मधुर महेरी गोपिनि प्यारी ॥
राजभोग लौनो भात पसाय। मूग ढरहरी हीगु लगाय ॥
रोटी रुचिर कनक बेसन करि। अजवाइन सैंधो मिलाइ धरि ॥
लावन लाड लागत नीके। सेव सुहारी घेवर घी के ॥
गूजा गूथे गाल मसूरी। मेवा मिलै कपूरनि पूरी ॥
ससि सम सुदर सरस अदरसे। ऊपर कनी अमी जनु परसे ॥
बहुत जलेंब जलेबी बोरी। नाहिन घटत सुधा त थोरी ॥
इतने व्यजन जसोदा कीन्हे। तब मोहन बालक सग लीन्हे ॥
बैठे आइ हँसत दोउ भया। प्रेम मुदित परसति है मया ॥
'सूरदास' देख्यौ गिरधारी। बोलि दई हँसि जूठनि थारी ॥
यह 'ज्यौनार' सुनै जो गावै। सो निज भक्ति अभै पद पावै ॥१८३१॥

यह पद राजभोग' का है, किंतु इसमे 'छप्पन भोग' का भावात्मक कथन किया गया है। साप्रदायिक इतिहास से ज्ञात होता है कि श्री विट्ठलनाथ जी अपने उपास्य ठाकुर श्री नवनीतप्रिय जी का गोकुल मे 'छप्पन भोग' करना चाहते थे। किंतु आर्थिक तथा अन्य कारणो से स० १६४० तक भी वैसा करना सभव नही हुआ। तभी उन्हे अपने तिरोधान का आभास होने लगा। अत उन्होने अपने सकल्प की पूर्ति हेतु श्री नवनीतप्रिय जी की प्रधानता मे सभी उपास्य स्वरूपो को विराजमान कर गोकुल मे 'राजभोग' करते हुए 'छप्पन भोग की भावना मात्र की थी। सूरदास ने इसीलिए उस आयोजन को 'छप्पन भोग' न कह कर 'ज्यौनार' की सज्ञा दी है, जब कि मानिकचद, भगवानदास आदि अन्य तत्कालीन पुष्टिमार्गीय भक्त-कवियो के पदो मे इसे 'छप्पन भोग' ही कहा है। वह आयोजन स० १६४० मे हुआ था। चतुर्भुजदास द्वारा कथित और श्री हरिराय जी द्वारा लिखित 'खटऋतु की वार्ता' से भी ज्ञात होता है कि वह साप्रदायिक समारोह स० १६४० मे सपन्न हुआ था, और उसमे सूरदास जी उपस्थित थे। इस प्रकार अत साक्ष्य एव बाह्य साक्ष्यो से सूरदास का उपस्थिति-काल स० १६४० तक सिद्ध होता है।

देहावसान— वार्ता' से ज्ञात होता है, जब सूरदास को भक्ति-साधना और कीर्तन-सेवा करते हुए अति काल हो गया, तब अतत उनके महाप्रयाण का समय आया। एक दिन जब वे अपने नियमानुसार श्रीनाथ जी के मदिर मे कीर्तन करने को गये, तब 'मगला' की झाकी के उपरात उन्हे अकस्मात अपने देहावसान का आभास होने लगा। फलत वे अपने नियम के विरुद्ध श्रीनाथ जी की मगला आरती के अनतर ही अपने निवास-स्थल परासौली-चद्रसरोवर को चले गये। वहाँ पहुँच कर उन्होने श्रीनाथ जी की ध्वजा को भक्ति-भाव से प्रणाम किया, और उसी की ओर मुख कर वे एक चबूतरे पर लेट गये। तत्पश्चात् उन्होने समस्त लौकिक विषयो से अपने मन को हटा लिया, और वे एकाग्र चित्त से श्रीनाथ जी, आचार्य जी और गोसाई जी का ध्यान करते हुए अपने महाप्रयाण की प्रतीक्षा करने लगे।

उधर श्रीनाथ जी के मदिर मे शृगार की झाकी के अवसर पर जब गो० विट्ठलनाथ जी ने कीतन मडली मे सूरदास को नही देखा, तब उन्होने अपने सेवको से उनके विषय मे पूछ-ताछ की। उन्हे बतलाया गया कि आज मगला-आरती के अनतर ही सूरदास जी सब वैष्णवो से विदा माँग कर परासौली की ओर चले गये है। गोसाई जी ने तत्काल जान लिया कि सूरदास के देहावसान का समय आ गया है। उन्होने समस्त वैष्णवो को सबोधित करते हुए कहा —"सूरदास 'पुष्टिमार्ग के जहाज' है। वे अगणित गुणो के भडार है। अब उनके जाने का समय आ गया है। आप लोग उनके पास जाओ, और उनसे जो कुछ लेना हो, ले लो। हम भी श्रीनाथ जी के राजभोग की आरती कर वहाँ आते है।"

गोसाई विट्ठलनाथ जी के आदेशानुसार अनेक भक्तजन सूरदास जी का अतिम दर्शन और उपदेश प्राप्त करने के लिए परासौली गये। कुछ समय पश्चात् राजभोग की आरती कर स्वय विट्ठलनाथ जी भी वहाँ पहुँच गये। उस समय सूरदास मरणासन्न अवस्था मे अचेत पडे थे। गो० विट्ठलनाथ जी ने उनका हाथ पकड कर कहा,— 'सूरदास जी, कैसे हो ?' गोसाई जी के स्पर्श से सूरदास की चेतना जागृत हुई, और उनके शब्दो को सुनते ही उन्होने नेत्र खोल दिये। फिर उन्होंने गोसाई जी को प्रणाम करते हुए कहा,—'मैं तो आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा था।'

उसके उपरात सूरदास राधा-भाव मे रस मग्न हो गये। श्री विट्ठलनाथ जी ने उनसे पूछा—'सूरदास जी ! इस समय तुम्हारे चित्त की वृत्ति कहाँ लगी है ?' उसके उत्तर मे उन्होने 'राग विहागरौ' मे जिस पद को गुनगुनाया था, वह इस प्रकार है,—

बलि-बलि जाऊँ कुँवरि राधिका, नद-सुवन जासौं रति मानी।
वै अति चतुर, तू चतुर-सिरोमनि, प्रीति करी कैसे रहि छानी॥
वै जु धरति तन कनक पीत पट, सो तौ सब तेरी गति ठानी।

तै पुनि स्याम सहज वै सोभा, अबर मिस अपनै उर आनी ।।
पुलकि रोम अब ही ह्वै आयौ, निरखि रूप निज देह सयानी ।
'सूर' सुजान सखी के बूझे, प्रेम प्रकास भयौ, बिहँसानी ।।

फिर कृष्ण-दर्शन के लिए व्याकुल राधा जी के खजन रूपी चचल नेत्रो की भावना को आत्मसात करते हुए अध चेतन अवस्था मे उन्होने गुनगुनाया,—

खजन नैन रूप रस माते ।
अतिसै चारु चपल अनियारे, पल - पिंजरा न समाते ।।
चलि-चलि जात निकट स्रवननि के, उलटि पलटि ताटंक फँदाते ।
'सूरदास' अजन-गुन अटके, नतरु कबहि उडि जाते ।।

तत्पश्चात् युगल स्वरूप का ध्यान करते हुए वे भावावेश मे समाधिस्थ हो गये । उसी अलौकिक दिव्यानद की अवस्था मे उन्होने अपने पचभौतिक शरीर को छोड दिया, और नि कुज-लीला का रसास्वादन करने को वे महाप्रस्थान कर गये ।

तदनतर श्री विट्ठलनाथ जी के आदेश से उपस्थित भक्त जनो ने सूरदास जी के अतिम सस्कार का समुचित प्रबध किया । उन्होने उक्त भक्त शिरोमणि के अनत गुणो का स्मरण करते हुए उनकी नश्वर देह की विधिवत् दाह-क्रिया की । इस प्रकार सूरदास जी का देहावसान गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की विद्यमानता मे और रामदास, कुभनदास गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास आदि बहुसख्यक पुष्टिमार्गीय भक्त जनो की उपस्थिति मे अपराह्न के समय स० १६४० के लगभग परासौली-चद्रसरोवर पर हुआ था । साप्रदायिक मान्यता के अनुसार उनके तिरोधान की तिथि माघ शु० २ है । उस समय उनकी आयु प्राय १०५ वर्ष की थी ।

जीवन-वृत्तात का निष्कर्ष—

सूरदास का जन्म सवत् १५३५ की वैशाख शुक्ला ५ मगलवार को सीही (हरियाणा) नामक गाँव के एक निधन सारस्वत ब्राह्मण परिवार मे हुआ था । वे जन्माध थे, अत अपने साधनहीन माता-पिता के लिए भार जान पडते थे । फलत उन्हे स्वाभाविक मातृ पितृ स्नेह कभी प्राप्त नही हुआ । जब तक वे अबोध बालक थे, तब तक उन्हे अपना दुदशा का अनुभव नही हुआ था, किंतु जैसे ही वे कुछ समझने-बूझने लगे, उन्हे अपनी दयनीय स्थिति असह्य हो गई । अतएव वे अपनी ६ वर्ष की आयु मे ही अकेले घर से निकल दिये । उनके माता-पिता आदि ने भी उन्हे रोकने की कोई खास चेष्टा नही की । वे अपनी लाठी टेकते हुए सीही गाँव के बाहर एक तालाब के तट पर आये, और वहाँ विश्राम करने को रुक गये । पूव सस्कार वश उनके हृदय मे विरक्ति-भावना और भगवद्-भक्ति का उदय हो गया था । वे हरि-नाम का जाप करते हुए आगामी योजना पर विचार करने लगे ।

भगवान् बडे दयालु हैं। जिसका कोई सहारा नही होता, उसे वे आश्रय प्रदान करते हैं। उनकी लीला बडी विचित्र है। उसके कारण जहाँ सूरदास को जन्माधता एव दरिद्रता का अभिशाप मिला था, वहाँ उन्हे वाक्-सिद्धि का वरदान भी प्राप्त हुआ था। वह वरदान उन्हे शकुन विद्या की सिद्धि और काव्य सगीतादि कलाओ की जन्मजात प्रतिभा के रूप मे प्रतिफलित हुआ। उनका कठ-स्वर जन्म से ही बडा मधुर था। वे शकुन विचार कर जो कुछ कहते थे, वह सत्य होता था। उसके साथ ही वे मधुर कठ से काव्य बद्ध ऐसा सुदर गायन करते थे कि श्रोता मुग्ध हो जाते थे।

उन अलौकिक गुणो के कारण उनके जैसे निराश्रित एव नेत्रहीन बालक के लिए बिना किसी प्रयास के सुखद आश्रय मिल गया, और जीवन-यापन की समस्त सुविधाएँ उपलब्ध हो गई। वहाँ वे सुख शाति पूर्वक रहते हुए भक्ति-साधना करने लगे। भगवद् कृपा से उन्हे अतर्दृष्टि भी प्राप्त हो गई, जिसके कारण बाह्य चक्षुओ के बिना भी वे जीवन एव जगत् की समस्त गति-विधियो को प्रत्यक्ष देखने लगे। प्रबुद्ध साधु-सतो के सत्सग से उन्होने अनेक विद्याओ एव कलाओ का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। अपने अनुपम गुणो के कारण उनकी ख्याति सीही क्षेत्र से बाहर दूर-दूर तक हो गई थी। विविध स्थानो से बहुसख्यक व्यक्ति उनके पास आने लगे। वे उनकी शकुन विद्या, अतर्दृष्टि और वैराग्य एव दास्य भावो के मधुर गायन से लाभान्वित होते थे। उस समय उनका महत्त्व खूब बढ गया था, और वे 'स्वामी जी कहे जाने लगे। अनेक व्यक्ति उनके शिष्य-सवक हो गये थे।

एक रात्रि को जब वे सो रहे थे, तब अचानक उनकी आँखे खुल गई। वे सहसा अपनी स्थिति पर विचार करने लगे। उन्हे बोध हुआ कि मान-प्रतिष्ठा के माया-जाल मे फँस कर वे अपना जीवन व्यथ नष्ट कर रहे है। उससे उन्हे घोर मानसिक वेदना होने लगी, और वे अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करने लगे। तभी उन्होने सीही क्षेत्र को छोड कर अन्यत्र चले जाने का निश्चय किया।

प्रात काल होते ही उन्होने सेवक भेज कर अपने द्रव्यार्थी पिता को बुलवाया, और अपना समस्त वैभव उसे सौप दिया। फिर वे केवल एक वस्त्र धारण कर और अपनी लाठी ले कर सीही क्षेत्र से चल दिये। उनके शिष्य-सेवको मे से जो माया मे ग्रस्त थे, वे उसी स्थल पर रह गये, किंतु जो सच्चे साधक थे, वे उनके साथ हो लिये।

सूरदास ६ वष तक सीही स्थित अपने घर मे माता-पिता आदि के साथ रहे थे। उसके पश्चात् १२ वर्ष तक अर्थात् १८ वष की आयु पर्यंत सीही गाँव के बाहर तालाव के तट पर उन्होने निवास किया था। इस प्रकार सीही क्षेत्र उनकी जीवन-यात्रा का प्रथम पडाव बना, जहाँ उन्होने स० १५५३ तक भक्ति-साधना की थी।

सीही क्षेत्र को सदा के लिए छोड कर वे श्रीकृष्ण के जन्म-स्थान मथुरा की ओर चल दिये। माग मे रुकते हुए वे स १५५४ के लगभग मथुरा पहुँचे थे। उस

सुप्रसिद्ध तीर्थ-स्थान पर वे स्थायी रूप से निवास करने को आये थे, किंतु वहा की आतकपूर्ण स्थिति के कारण उनका मन नही रम सका। व्रज के अन्य धार्मिक स्थल सघन बनो से आच्छादित होने के कारण तब तक आवास के अनुकूल नही हुए थे। फलत, उन्हे मथुरा मडल से अन्यत्र जाना आवश्यक हो गया था।

किसी सुविधाजनक स्थान की खोज मे वे मथुरा से आगरा की ओर चल पडे। मार्ग के कतिपय स्थानों मे विश्राम करते हुए वे रेणुका तीर्थ के 'गऊघाट' नामक पुनीत स्थल मे पहुँचे। वहाँ के यमुना तट पर कुटी बना कर वे अपनी उपासना-भक्ति और सगीत-साधना मे लग गये। उस स्थान पर निवास करते समय उन्हे प्रबुद्ध साधु-सतो और विविध विद्याओ एव कलाओ के गुणी जनो के सपर्क मे आने का स्वर्णिम सुयोग प्राप्त हुआ था। उसके कारण उनकी धम-निष्ठा, भक्ति भावना और सगीतज्ञता की अत्यधिक उन्नति हुई थी। फलत सीही से अधिक वहाँ उन्हे 'सूर स्वामी' के रूप मे प्रतिष्ठा प्राप्त हुई, और अनेक श्रद्धालु जन उनके शिष्य सेवक हो गये। गऊघाट' का वह पुण्य स्थल सीही के पश्चात् उनकी भक्ति-साधना का द्वितीय पडाव था, जहाँ उन्होने प्रायः १२ वर्ष तक निवास किया था।

सयोग से वहाँ उनकी पुष्टिमार्ग के प्रवर्त्तक श्री वल्लभाचाय जी से भेट हुई। सूरदास श्री आचार्य जी मे अत्यधिक प्रभावित हुए, और उनके पुष्टि माग मे दीक्षित हो गये। वल्लभ सप्रदाय की मान्यता है कि स १५६७ की वशाख कृ ११ को सूरदास ने श्री आचाय जी से दीक्षा ली थी। उस समय उनकी आयु ३२ वर्ष के लगभग थी।

श्री वल्लभाचार्य जी के अनुगत होने पर सूरदास के जीवन में नया मोड आया। उनकी उपासना-भक्ति का रूप ही बदल गया। वे दास्य-वैराग्य की साधना और तद्विषयक पद-गान करने के बजाय भगवान् श्रीकृष्ण के बाल-किशोर रूप की उपासना और उनकी विविध लीलाओ का गायन करने लगे। श्री वल्लभाचाय जी ने उन्हे गोवर्धन स्थित श्रीनाथ जी के मदिर में कीर्तन करने के लिए नियुक्त किया था। श्री आचार्य जी के पश्चात् उनके यशस्वी पुत्र श्री विट्ठलनाथ जी ने उन्हे 'अष्टछाप' की कीर्तन-मडली का मुखिया बनाया था।

गोवर्धन मे सूरदास का स्थायी निवास श्रीनाथ जी के मदिर से कुछ दूर परासौली गाँव के चद्र सरोवर पर रहा था। स० १५६७ ६८ से अपने अतिम काल स० १६४० तक के प्राय ७२-७३ वर्ष तक उन्होने नियमित रूप से श्रीनाथ जी का कीर्तन किया था। इसके लिए उन्होने 'सहस्रावधि' ही नही 'लक्षावधि' पदो की रचना की, जो बाद मे सूरसागर एव अन्य कृतियो के रूप मे सकलित किये गये थे। उनका देहावसान स० १६४० के लगभग श्री विट्ठलनाथ जी के समक्ष परासौली-चद्र सरोवर पर हुआ था। उस समय उनकी आयु प्राय १०५ वर्ष की थी।

उपसहार

सूरदास का चित्र

सूरदास का कोई समकालीन चित्र उपलब्ध नही हैं। इस समय जो भी चित्र प्रचलित है, वे सब बाद के हैं। किंतु इसका यह अभिप्राय नही है कि उस काल मे इस तरह के चित्राकन की पृथा ही नही थी। कला की दृष्टि से सूर का चित्र जिस कोटि मे आता है, उसे 'व्यक्ति चित्र', 'छवि चित्र' अथवा 'सादृश्य' कहा जाता है। इस प्रकार का चित्रालेखन व्यक्ति विशेष को एक बार देख लेने पर, अथवा उसकी आकृत्ति का विवरण जान कर ही कर लिया जाता था, और वह उस व्यक्ति का यथावत् चित्र होता था। यह कला भारत मे पुरातन काल से प्रचलित रही है। पुराण, इतिहास, काव्य, नाटक आदि प्राचीन वाङ्मय मे इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। श्रीमद् भागवत (स्कध १० उत्तराध, अध्याय ६२, श्लोक १८-२२) से ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण की पौत्र-बधू ऊषा की सखी चित्रलेखा व्यक्ति चित्र अकित करने की कला मे अत्यत निपुण थी। उसने ऊषा द्वारा स्वप्न मे देखे हुए राजकुमार अनिरुद्ध की आकृत्ति का विवरण जान कर उसका यथावत् चित्र अकित कर दिया था। तभी उन दोनो का मिलन सभव हुआ था।

व्यक्ति-चित्रालेखन की वह परपरागत कला सुलतानी शासन काल मे उनके मजहबी दृष्टिकोण के कारण हीनावस्था मे थी, किंतु उसका सर्वथा लोप नहीं हुआ था। सूरदास का जो समकालीन चित्र उपलब्ध नही है, इसका कारण चाहे उसका आलेखन न किया जाना हो, और चाहे उसका नष्ट हो जाना। सूरदास के उत्तर जीवन मे जब मुगल सम्राट अकबर का शासन था, तब 'शबीह' के नाम से उक्त कला का पुनरुद्धार हुआ था। अकबर के दरबारी चित्रकार, जिनमे हिन्दू और मुसलमान दोनो थे 'शबीह' बनाने की कला मे बडे कुशल थे। उन्होने सम्राट सहित अनेक विशिष्ट राजपुरुषो एव दरबारियो की 'शबीह' अकित की थीं। सम्राट अकबर के पश्चात् जहाँगीर एव शाहजहा के शासन काल मे 'शबीह' कला का अधिक विकास हुआ था। धार्मिक क्षेत्र मे भी तब धर्माचार्यो एव विशिष्ट भक्तो के व्यक्ति चित्र बनाये जाने लगे थे। श्री वल्लभाचाय जी के चित्र का उल्लेख 'वार्ता' साहित्य मे मिलता है। उधर सम्राट शाहजहाँ के चित्रकारो ने मुसलमान राज पुरुषो और सूफी सतो के साथ-साथ कतिपय हिंदू धर्माचार्यों एव सत-महात्माओ की भी 'शबीह' बनाई थी, और उन्हे शाही चित्रशाला मे आदर पूवक रखा गया था। वे शबीह सभवत सत कबीर, गुरु नानक, श्री वल्लभाचार्य, स्वामी हरिदास आदि के अतिरिक्त सूरदास की भी थी।

मुगल सम्राट शाहजहाँ का एक सामंत रूपसिंह नामक राजपूत था, जो किशनगढ राज्य का राजकुमार था। उसने सं० १७०१ से सं० १७१५ तक सम्राट के आदेशानुसार भारत के पश्चिमोत्तर समावर्ती नगर काबुल, कंधार, बलख आदि के विद्रोही सरदारो से युद्ध कर उन्हे पराजित किया था। शाहजहा ने प्रसन्न होकर उसे मनसब एव जागीर प्रदान की थी, साथ ही उसकी इच्छानुसार शाही चित्रशाला के कतिपय धार्मिक चित्र भी दिये थे। रूपसिंह उन्हे किशनगढ ले गया, और जब वहाँ राजकीय चित्रशाला की स्थापना हुई तब वे उसमे रखे गये थे। बाद मे वहाँ के चित्रकारो ने उनकी अनुकृतियाँ किशनगढ शैली मे अंकित की थी।

सूरदास के चित्र की प्राप्ति और उसका प्रचार—सूरदास के प्रामाणिक जीवन-वृत्तात के अनुसधान का जितना विपुल प्रयास हुआ है, उसका अल्पाश भी उनके विश्वसनीय चित्र को प्राप्त करने के लिए नही किया गया। स्व डा वासुदेवशरण अग्रवाल सभवत पहले व्यक्ति थे, जिन्होने इस कार्य को हाथ मे लिया था। वे अपने समय मे इतिहास, पुरातत्त्व भारतीय संस्कृति एव विभिन्न कलाओ के अनुपम ज्ञाता तथा राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान थे। जब वे दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय, जो तब 'सेन्ट्रल एशियन एनटिक्विटीज म्युजियम' कहलाता था, के उपाध्यक्ष थे, तब उन्हे ऐतिहासिक महत्त्व की सामग्री प्राप्त करने के उद्देश्य से राजस्थान के पूर्ववर्ती किशनगढ राज्य की राजधानी मे जाने का सुयोग प्राप्त हुआ था। वहाँ उन्होने अन्य पुरातात्त्विक वस्तुओ के साथ-साथ राजकीय चित्रभंडार को भी देखा था। उक्त भडार मे उन्हे अन्य बहुसख्यक चित्रो के साथ-साथ धर्माचार्यों और सत-महात्माओ के चित्र भी देखने को मिले थे। उन्होने उनमे से कुछ की अनुकृतियाँ तैयार कराई थी, जिनमे सूरदास का भी एक लघु चित्र था। सूरदास की उस अनुकृति को उन्होंने प्रामाणिक चित्र के रूप मे प्रचारित किया था।

डा० अग्रवाल जी ने सूरदास के उक्त लघु चित्र से एक बडा तैल चित्र ब्रज साहित्य मडल के लिए बनवाया था, किंतु उसमे थोडा सशोधन कर दिया था। मूल चित्र मे सूरदास का दाहिना हाथ छोटी बैसाखी के सहारे टिका हुआ था। बडा चित्र बनवाते समय उस बैसाखी को निकाल दिया गया। बाद मे जब मुझे अपने ग्रंथो मे देने के लिए सूरदास के प्रामाणिक चित्र की आवश्यकता हुई, तब डा० अग्रवाल जी ने मेरे व्यय पर सूरदास का तिरंगा ब्लाक बनवा दिया था, जो मूल चित्र पर आधारित है। वह चित्र विगत सन् १९५१ से अब तक मेरे ग्रथो मे छपता रहा है। इस ग्रथ के आरंभ मे भी वही चित्र छपा है। डा० अग्रवाल जी द्वारा प्रचारित इस चित्र को आधार मान कर देश-विदेश के अनेक चित्रकार एव फोटोग्राफर सूरदास के छोटे-बडे चित्र तैयार करते रहे हैं, और उन्हे सर्वत्र प्रामाणिक माना गया है।

इस समय डा० अग्रवाल जी द्वारा प्रचारित चित्र के अतिरिक्त सूरदास के और भी कई चित्र प्रचलित है। इनमे से एक मे उन्हे अश्रु पूरित एव भाव-विह्वल मुद्रा मे अकित किया गया है। उनके निकट एक सेवक है, जा उनके आँसुओ को पोछने के लिए प्रयत्नशील है। सामने की कुछ दूरी पर दो अन्य व्यक्ति बैठे हैं। उनमे से एक के हाथ मे एकतारा है, और दूसरा लेखन-सामग्री लिये हुए है, जो क्रमश सूरदास के गायन की सगति और उसे लिपिबद्ध करने के प्रयास मे हैं। इस चित्र को भी किशनगढ़ के चित्र की अनुकृति के रूप म तैयार किया हुआ बतलाया जाता है। इसका प्रकाशन सवप्रथम वल्लभ सप्रदायी कीतन सग्रहो मे हुआ था, और बाद मे इसे गीता प्रेस, गोरखपुर की 'सूर-विनय-पदावली' मे प्रकाशित किया गया। इस चित्र मे से केवल सूरदास की छवि को कुछ बडे आकार मे तैयार करा कर स्व० श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी ने अपने द्वारा सपादित 'सूरसागर' के प्रथम खड मे छपवाया था। इस चित्र मे सूरदास की वेश-भूषा, धोती, उपरना, टोपा, कठीमाला और उनके बैठने का ढग सब कुछ डा० अग्रवाल जी द्वारा प्रचारित चित्र की भाँति है, किंतु मुखाकृति मे थोडा अतर है।

उक्त चित्र की प्रतिकृति यहाँ प्रस्तुत है,—
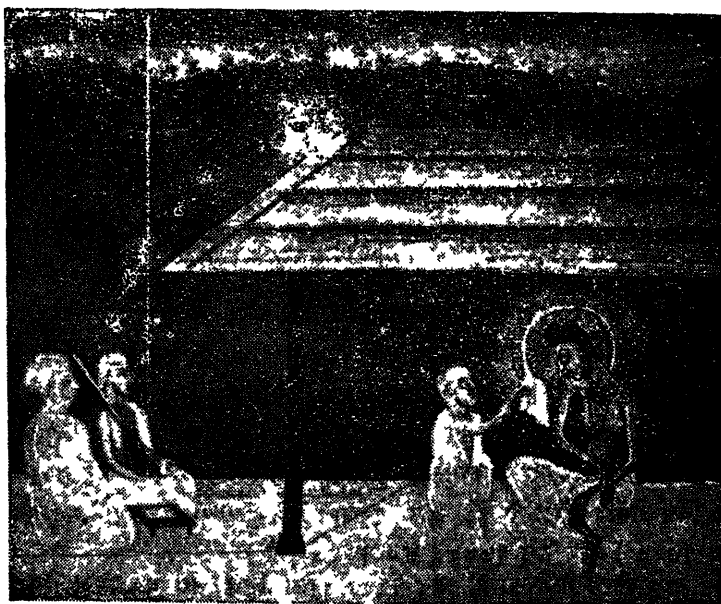
सूरदास [भाव-विह्वल होकर अश्रुपात करते हुए]

सूरसागर की सचित्र प्रतियो मे सूर की छवि—सूरसागर की कुछ सचित्र प्रतियाँ भी मिली है। इनके चित्र सूरदास के पदो पर आधारित है। सूर के पदो मे दृश्यात्मकता और चित्रोपयोगी तत्त्वो का इतना बाहुल्य है कि उनके आधार पर विभिन्न शैलियो के चित्रकारो ने प्रचुरता से चित्रालेखन किया है। सयोग से ऐसे कुछ चित्रो मे सूरदास की छवि भी अकित की गई है। आगरा से प्रकाशित त्रैमासिक 'सूर-सौरभ' के वर्ष १ के अक १, ३ और ४ मे ऐसे तीन चित्र छपे है। इनमे ऊपर की ओर सूरदास के पद लिखे हुए हैं उनके नीचे पदो के भाव पर बनाये गये चित्र है। नीचे की तरफ के एक कौने मे सूरदास की छवि का अ कन किया गया है। चित्रो के परिचय के रूप मे 'सूरसागर का एक पृष्ठ' मात्र लिखा गया है। यह नहीं बतलाया कि सूरसागर की वह प्रति कहाँ की है, और किस सवत मे लिपिबद्ध की गई है। इससे इन चित्रो के आलेखन के स्थान और काल का निश्चय नही होता है। इनमे सूरदास को करताल अथवा झाझ बजा कर कीतन करने की मुद्रा मे अकित किया गया है। वे बैठे हुए हैं, और सिर पर टोपी नुमा टोपा धारण किये हैं, जो इन चित्रो की विशेषता है। पीत उपरना और लाल धोती पहिने है, गले मे माला है। इन तीनो चित्रो मे सूरदास की छवि मे कुछ अ तर दिखलाई देता है। वैसे सूर के प्रामाणिक चित्र का निश्चय करने मे इनसे बडी सहायता मिल सकती है।

डा० जयसिंह नीरज ने 'राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य' विषय पर शोध करने के प्रसग मे विविध स्थानो के सग्रहालयो का अनुसधान किया था। उन्होने सूरसागर के ऐसे अनेक सचित्र पृष्ठ देखे, जिनमे पद के भाव को रग और रेखाओ द्वारा सफलता पूर्वक अ कित किया गया है। इनमे ऊपर की ओर सूर का वह पद लिखा है, जिसके आधार पर चित्राकन हुआ है। ऐसे कुछ चित्रो मे भी सूरदास की छवि का चित्रण किया गया है।

डा० नीरज ने ऐसे कतिपय चित्रो का प्रकाशन करते हुए सूरदास के चित्र की प्रामाणिकता पर सारगर्भित विचार व्यक्त किये हैं। उनके द्वारा प्रकाशित एक चित्र सूरदास के पद 'अपुनपौ आपन ही बिसर्यो' के आधार पर है। दूसरा चित्र उनके अन्य पद 'लाल तिहारी मुरली नैंक बजाऊँ' पर आधारित है। इनमे से पहले चित्र मे माया जन्य भ्रम-जाल का और दूसरे मे 'ललित हाव' पूर्ण राधा-कृष्ण की केलि-क्रीडा का कई स्तरो मे कलात्मक अकन हुआ है। डा० नीरज के मतानुसार ये दोनो चित्र मेवाड शैली के हैं, और इनका चित्रण-काल क्रमश सन् १६५० (स० १७०७) और सन् १७०० (स० १७५७) है।

डा० नीरज ने लिखा है, सन् १६५० वाला चित्र इस प्रकार के चित्रो में सबसे पुराना है। चित्र के बीच मे सूरदास को एक कुटी मे बैठे हुए और कीर्तन करते हुए अकित किया गया है। वे नंगे सिर हैं, और हाथ उठा कर गायन की मुद्रा

मे अ कित किये गये है। सलेटी धरती के बीच हल्के सफेद रग मे अ कित यह चित्र अधिक प्रभावशाली नही बन पडा है, किंतु अब तक उपलब्ध समस्त चित्रो मे यह सर्वाधिक प्राचीन है। जयपुर के कुवर सग्रामसिह के निजी पुस्तकालय मे इसे देखा जा सकता है।

सन् १७०० के चित्र मे 'ललित हाव' का अकन अत्यधिक कलात्मक है। इसमे दाहिनी ओर कोने मे सूरदास जी का चित्र अकित है। वे कुटिया मे बैठे हुए कीर्तन कर रहे हैं। सिर पर गोल लाल टोपा, कधे पर पीला अगोछा और लाल धोती पहने पालथी मारे झाझ मे कीर्तन करते हुए सूरदास जी का यह चित्र उनके अत्यधिक अनुकूल बन पडा है। सूर की मुख-मुद्रा अत्यत भाव पूण है[1]।

सूरदास का एक भित्ति-चित्र—इधर सूरदास जी का एक और चित्र प्रकाश मे आया है। इसे जलालपुर (गुजरात) के एक पुष्टि सप्रदायी भक्त जन के मकान की भित्ति पर अ कित चित्र की अनुकृति के रूप मे तैयार किया गया है। इसमे सूरदास को अपने तीन अष्टछापी साथी सवश्री कुभनदास, कृष्णदास और परमानददास के साथ गो० विट्ठलनाथ जी के समक्ष करबद्ध मुद्रा मे खडे हुए दिखलाया गया है। वल्लभ सप्रदायी विद्वान स्व० श्री द्वारकादास परीख ने उस भित्ति-चित्र की लघु अनुकृति का आलेखन कराया था। डा० गोवर्धननाथ शुक्ल ने उसमे से सूरदास का अलग से बडा फोटो बनवा कर उसे सूर का प्रामाणिक चित्र सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, और प० सीताराम चतुर्वेदी द्वारा सपादित सटीक सूर-ग्रथावली के पचम खड के आवरण पृष्ठ पर उसे प्रकाशित किया गया है। इस चित्र मे सूरदास की आकृत्ति पूर्वोक्त सभी चित्रो से भिन्न है, और इसकी वेश-भूषा मे अत्यधिक साप्रदायिकता हैं। डा० शुक्ल का कथन है कि जलालपुर का यह भित्ति-चित्र स० १६२० मे उस समय अकित किया गया था, जब गो० विट्ठलनाथ जी सूरदास सहित उन चारो वरिष्ठ अष्टछापी कीर्तनकारो के साथ गुजरात की यात्रा करते हुए वहाँ पहुँचे थे, और एक भक्त जन रामकृष्ण को उन्होने पुष्टि सप्रदाय की दीक्षा दी थी। तभी रामकृष्ण के सेवक विट्ठलदास खवास ने अपने स्वामी के दर्शनार्थ उक्त भित्ति-चित्र को अ कित किया था[2]।

---

१ **'उत्तर प्रदेश', वर्ष ८ अक १२ (मई सन् १९८०) मे प्रकाशित लेख,—'सूरसागर का चित्रण और सूर के चित्र की प्रामाणिकता।' इसमे सन् १६५० वाला चित्र विविध रगो मे आवरण पृष्ठ ४ पर छपा है, और सन् १७०० वाला चित्र लेख के साथ काली स्याही मे मुद्रित है।**

२ **हिन्दी 'अमर उजाला' आगरा (७ जनवरी सन् १९७९), और गुजराती 'वैश्वानर' पोरबदर (अप्रैल-मई सन् १९७९) मे प्रकाशित लेख से।**

डा० गोवधननाथ शुक्ल का दावा है कि सूरदास का यही एक मात्र प्रामाणिक चित्र है, जब कि अन्य सभी चित्र अप्रामाणिक हैं। इसके विरुद्ध पहली बात यह है कि गुजरात की किसी भी यात्रा मे कोई भी अष्टछापी कीतनकार गो० विट्ठलनाथ जी के साथ नही गया था। सूरदास जैसे नेत्रहीन वयोवृद्ध व्यक्ति के लिए श्रीनाथ जी की कीतन-सेवा छोड कर गुजरात की लबी यात्रा करने का तो प्रश्न ही उपस्थित नही होता है। दूसरी बात यह है कि उक्त चित्र मे सभी व्यक्तियो का अकन उनकी वास्तविक आयु और स्थिति के अनुसार नही हुआ है। उदाहरणाथ कुभनदास और कृष्णदास की आकृत्तियाँ समृद्ध सेठो की भाँति अकित की गई है, जब कि कुभनदास ठेठ ग्रामीण कृषक और अत्यत निधन व्यक्ति थे। उनकी वेश-भूषा भी उसी प्रकार की थी। तीसरी बात यह है कि चित्रकला के किसी भी मर्मज्ञ ने उसे मान्यता प्रदान नही की है। विख्यात कला-विशेषज्ञ स्व० राय कृष्णदास जी ने इसे काल्पनिक और परवर्ती बतलाया था। उनके सुपुत्र कला-समीक्षक राय आनदकृष्ण जी का भी यही मत है। शोधक विद्वान डा० जयसिह नीरज का कथन है,—'साधारण कला-ममज्ञ भी इस बात से सहमत नही हो सकता कि यह भित्ति-चित्र सन् १५६३ (स० १६२०) का हो सकता है। कल्पना के आधार पर पुष्टि सप्रदाय के सेवको की पुष्ट शैली के अनुकूल बनाया गया यह चित्र है, जो अपनी बनावट और शैली की दृष्टि से १८ वी शती के अत का सा लगता है। अत इसकी प्रामाणिकता को स्वीकार नही किया जा सकता है[1]।'

जिस समय डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल ने सूरदास के चित्र को प्राप्त कर उसका प्रचार किया था, उस समय उनका कोई दूसरा विश्वसनीय चित्र उपलब्ध नही था। अब सौभाग्य से सूरदास के अनेक चित्र विविध शैलियो एव विभिन्न मुद्राओ के प्राप्त हो गये है। इनमे सब से प्राचीन सूरसागर की सचित्र प्रतियो मे अकित उनके लघु चित्र हैं, जिनकी छवि परपरा के अनुकूल होने की सभावना के कारण प्रामाणिकता के अधिक निकट हो सकती है। चित्रकला मर्मज्ञो को इन सभी चित्रो पर गभीरता पूर्वक विचार कर सूरदास के प्रामाणिक चित्र का निणय करना चाहिए। जब तक ऐसा नही होता, तब तक डा० वासुदेवशरण जी द्वारा प्रचारित चित्र का यथावत् प्रकाशन ही उचित होगा। इसीलिए इस ग्रथ के आरभ मे उसी चित्र को छापा गया है।

———

१ 'उत्तर प्रदेश' लखनऊ, वर्ष ८ अक १२ (मई सन् १९८०) में प्रकाशित लेख से।

परिशिष्ट १

प्राणनाथ कृत 'अष्ट सखामृत' मे सूरदास का जीवन-वृत्त

प्राणनाथ वृदाबन निवासी एक पुष्टि सप्रदायी भक्त-कवि था। वह गो० गोकुलनाथ जी का समकालीन था, और गो० हरिदास जी से आयु मे कुछ बड़ा था। उसके द्वारा रचित 'अष्ट सखामृत' मे अष्टछापी आठो सखाओ का सक्षिप्त जीवन-वृत्त वर्णित है, जो गो० हरिराय जी कृत 'भावात्मक' वार्ता के अनुसार है। 'अष्ट सखामृत' की रचना अनुमानत स० १७३० से कुछ बाद की है। इसे ग्वालदास नामक एक वैष्णव ने स० १७६७ की पौष कृ० १५ शनिवार को ब्रज के गोवर्धन नामक पुण्य स्थल मे लिपिबद्ध किया था।

'अष्ट सखामृत' मे सूरदास का सक्षिप्त जीवन-वृत्त इस प्रकार है —

श्री वल्लभ प्रभु लाडिले, सोही सर-जलजात।
सारसुती दुज तरु सुफल, सूर भगत विख्यात ॥३६॥
सूर सूर हू सो अधिक, निसि-दिन करत प्रकास।
जाकी मति हरि-चरन मे, ताको देत विलास ॥३७॥
बाहर नैन विहीन सो, भीतर नैन विसाल।
तिन्हे न जग कछु देखिवौ, लखि हरि-रूप निहाल ॥३८॥
बाहर-अतर सकल तम, करत ताहि छन दूर।
हरि-पद मारग लखि परत, यासो साचे सूर ॥३९॥
स्याम सुधा मधु रस पगी, रसना सूर सुहाय।
'प्रान' मनहि थिर देत करि, हरि अनुराग बढाय ॥४०॥
जा तन लाग्यौ सूर-सर, दई अविद्या दागि।
जरे तोस-दानव सबै, हरि-पद भौ अनुरागि ॥४१॥
रूप-माधुरी हरि लखी, देखे नहि अन लोक।
हरि-गुन रस 'सागर' कियौ, हरन सकल जग सोक ॥४२॥
सारद बैठी कठ तेहि, निसि-दिन करत कलोल।
हरि लीला रस पद कथत, नित नए सूर अमोल ॥४३॥
कहा बडाई करि सकै, जाकौ प्रखर प्रकास।
श्री वल्लभ के लाडिले, कहियत सूरजदास ॥४४॥
जर वल्लभ सेयौ नहीं, गायौ नहि गुन सूर।
'प्रान' जप्यौ नहि नाम हरि, ताके मुख मे धूर ॥४५॥

यह समस्त विवरण सूरदास के जीवन वृत के लिए अत्यत महत्वपूर्ण है।

परिशिष्ट २

जमुनादास कृत 'धोल' में सूरदास का जीवन-वृत्त

जमुनादास गो० हरिराय जी का एक गुजराती सेवक था। उसने गुजराती भाषा के 'धोल' नामक गेय छद मे सूरदास का सक्षिप्त जीवन-वृत्त गो० हरिराय जी से सुन कर लिखा है। इस 'धोल' का रचना काल स० १७५० और लिपि काल स० १७८० है। इसमे सूर का जीवन-वृत्त इस प्रकार है,—

श्री सूरदास जी परम भक्त शिरोमणि, आ रहेता ते तो दिल्ही सीही ग्राम जो।
बालपने थी हरिभक्ति करता सदा, आ त्रणे कालना ज्ञानना राखे ह्ाम जो ॥१॥
प्रगट्या एतो ब्रह्म सारस्वत कुलमा, आ नेत्र विहीने दरिद्र पिता ना धाम जो।
कटु वचन सुणी ने घर थी चालिया, ते आवी पहोच्या एक तलावनी ठाम जो ॥२॥
रह्या बार वर्षं लगी त्या निर्भे थई, पण हरि मिलन नी चिता मननी माह्य जो।
एक दिवसे अति विरह चित्त ने थयो, त्यारे कृपा करीने प्रगट्या श्रीहरित्याह्य जो ॥३॥
नेत्र दई ने आप्या दशन श्रीनाथ जी, आ वर मागवाने कह्यु छे तेनी वार जो।
ए समय ना दशन थी मुदित थई आ अनरदृष्टि ए हरिलीला ने मागे जो ॥४॥
त्यारे अति प्रस न बदने श्रीनाथ जी, आ कहे, सुनो मम बाल सखा प्रवीन जो।
हवे शीघ्र ब्रजमडल मा जाओ तमे, त्या था जो श्री बल्लभ ने अधीन जो ॥५॥
ते वारे दशन आपीश हुँ तने, ने देखाडीश मम लीला ना परकार जो।
ए समय बिनती सूरदासे की धी, प्रभु! केम जाणु हुँ श्रीबल्लभनो आय जो ॥६॥
त्यारे कृपा करीने श्रीनाथ जी, आ कहे छ त्या श्री बल्लभ केरा रूप जो।
दक्षिण ब्राह्मण वेष सदा ऐउनो रहे आ स्याम वरन ने दिव्य तेज अनूप जो ॥७॥
ए परिक्रमण करीने पृथ्वी पावन करे, आ विहिण पादुका चरन सुवासिन जाम जो।
रूप बटुक सदा छे एहुना आ तारा थी ए दिवस दस महान जो ॥८॥
एम कहीने प्रभु त्यारे अतरध्यान थया, आ त्यारे तेमने प्रगट्यो विरह अपार जो।
पछी आज्ञा प्रभुनी माथे धरी, आ चाली आव्या मथुरा थई गौघाट जो ॥९॥
त्या रहीने कीरतन हरिना बहु करचा, ने ध्यान करचा श्री बल्लभ जी महाराज जो।
एम करता दक्षिण थी प्रभु आवी आ, ने शरणे लीधा छे भक्त शिरोमणि राज जो ॥१०॥
सहस्र नाम रची हरि लीला भासित करी, आ कीधा मनोरथ पूरण नदकुमार जो।
पछी त्या थी प्रभु श्री गोकुल आवीया, आ सगे लाव्या सूरदास ने ते वार जो ॥११॥
अही बाल-लीला ना सुख आपी ने आलाप्या तेमने श्रीगोवधन सुखधाम जो।
त्यां आत्मनिवेदने सोप्या छे श्रीनाथ जी, आ आपी सेवा कीतननी अष्टयाम जो ॥१२॥
तछी वेखाड्युरूप श्री गोवर्द्धन क्षेत्रनुआ सारस्वत कल्पनु वृदावन शुभ नाम जो।
त्यारे त्या रही शरणे पद रचना करी, आ सवालक्ष ते निज जन मन अभिराम जो ॥१३॥
पछी श्री गुसाईं जी ए थाप्या 'अष्टछापमा', अष्टसखा मध्य राज सिरोमनि रूप जो।
'जमनादास' अधम ते वर्णन शा करे, आ सुण्यु वदन जो श्रीहरिराय महारूप जो ॥१४॥

परिशिष्ट ३

श्रीनाथ भट्ट कृत 'वैष्णव वार्ता मणिमाला' में सूर का जीवन-वृत्त

मठेश श्रीनाथ भट्ट दाक्षिणात्य तैलग ब्राह्मण था। उसने सस्कृत मे 'वैष्णव वार्ता मणिमाला' ग्रथ की रचना की थी, जिसमे सूरदास सहित श्री वल्लभाचाय जी के अनेक सेवको की वार्ता का कथन है। श्रीनाथ भट्ट की विद्यमानता का काल स १७७५ से १८३० तक है, और 'वार्ता' का रचना काल स १८०० के लगभग है।

सूरदास की वार्ता स० ४७ की है जो इस प्रकार है,—

अथैक सूरिदासोऽभूत्प्राच्यो ब्राह्मण उन्मद ।
जन्मान्धोवै महान्प्रज्ञाचक्षु सुकृतिसत्तम ॥१॥

तरुण काव्यकृद्विद्वान् विटाना गायता वर ।
भ्रममाण क्वचित् पूर्वं विश्रुतौजसाम ॥२॥

आचार्याणा दर्शनार्थमरिल्ला[1] ग्राममागत ।
तेषामपि पुर कर्षान् फाँकडान[2] समगायत ॥३॥

तदाकर्ण्योचुराचार्या "रे सूर भगवत्प्रभो ।
लीलेहित विश्वहित वर्ण्यता गीयता' मिति ॥४॥

श्रुत्वेति सूरस्तानूचे "भो न वेद्मीह किंचन" ।
तन्निशम्योचुराचार्या "यद्येव तर्हि भो भवान् ॥५॥

तूर्णमेतु पुरोऽस्माक स्नात्वा क्वापि जलाशये ।
त्वयि सचारयिष्याम कृपया भगवद्दशम् ॥६॥

यथा लीलेहित सर्वं तस्य त्व वर्णयिष्यसि" ।
इत्युक्त स तथेत्याशु स्नात्वा क्वापि जलाशये ॥७॥

आयात शरण तेषा करण सर्व-सपदाम् ।
तदा श्रीवल्लभाचार्या मध्याद्भागवतस्य च ॥८॥

अनुक्रम तल्लीलाना जन्मादीनामबोधयन् ।
कृष्णस्योपादिशन्नाम – मन्त्रमप्यस्य सिद्धये ॥९॥

लोकेशूरेण सूरेण सूरिदासेन तत्क्षणे ।
कृत्वा गीत रसानीत पद चक्षुस्तमोपहम् ॥१०॥

श्रुत्वा ते "धन्य सूरेति श्लाघयामासुरेव तम् ।
व्रजभाषा बध काव्य-सागर वल्लभार्यका ॥११॥

तदा प्रभृति तत्तस्य सूरस्य वृहतो भुवि ।
गीतानि प्रथितानीह गीयन्ते वैष्णवर्मुदा ॥१२॥

एतादृक तत्कृपा पात्रमासीत्सूर स वैष्णव ।
भाषाप्रबधैककृतामग्रणीर्भगवत्प्रिय ॥१३॥

---

१ गऊघाट के स्थान पर अडेल का उल्लेख भ्रमात्मक है।

२ 'करखा' और 'फाकडा' नामक सामान्य गीत।

परिशिष्ट ४

नागरीदास कृत 'पद प्रसग माला' मे सूरदास का प्रसग

किशनगढ नरेश नागरीदास (स० १७५६–स० १८२१) सुप्रसिद्ध भक्त कवि थे। उन्होने बहु सख्यक काव्य ग्रथो के साथ-साथ कुछ गद्यात्मक ग्रथो की रचना भी की है। उनका एक ग्रथ 'पद प्रसग माला' है, जिसमे ३९ भक्त-कवियो के पदो से सबधित लघु कथाएँ ब्रजभाषा गद्य मे लिखी गई है। इसका रचना काल अनुमानतः स० १८०५ के लगभग है। इसमे सूरदास का प्रसग इस प्रकार है,—

प्रसग १—दोऊ नेत्र करि हीन एक ब्रजवासी कौ लरिका ब्रज मे सूरदास, सो होरी के भडौआ[1] बनाव दोय तुक का। ताके बास तें श्री गुसाईं जू सौं जाइ लोगन न कही। ता पर श्री गुसाईं जू वा लरिका कौं बुलाय वाके भडौआ सुने, हँसे। श्री मुख तें कह्यौ जु लरिका, तू भगवत जस बनाय, श्री भागौत के अनुसार प्रथम जनम ही की लीला गाय। तब वानें कही राज, हौं कहा जानौं। तब आग्या करी भगवत इच्छा है, तू बनावैगो। ऐसैं श्री गुसाईं जू की आग्या तें भगवत लीला भ्यासी, सरस्वती जिह्वाग्र भई। प्रथम ही श्री सूरदास जू जनम लीला की बधाई बनाय श्री गुसांई जू कौं सुनवाई। तब बहौत सन्न भये, कठी दुपटा महाप्रसाद दयौ, और सबन सौं आग्या करी जु श्रीठाकुर जू की आग्या तें हम कहत हैं, बरसवें दिन जनमाष्टमी की जनम लीला श्री गोवर्धननाथ जी आगें प्रथम ए ही बधाई गावैंगे। सो अब लौं ए ही बधाई गावत हैं। सो यह पद—

'ब्रज भयौ महर कै पूत, जब यह बात सुनी।
सुनि आनदे सब लोक, गोकुल गनिक-गुनी॥ "

प्रसग ३—वैष्णव सूरदास जू तिनके बहौत पद प्रसिद्ध हैं। तिन सूरदास जू की स्तुति पातसाह अकबर सुनी, अरु सूरदास जू सौं मिलि अरु उनकी परिच्छा लैन कौं यह कही। तुम्हारी कविता की बहौत बडाई सुनी है, तातें कछू हमारौ हू वर्नन करो। ता पर सूरदास या बात के ऊतर कौं एक पद ही पढ़ि सुनायौ। सो सुनि पातसाह सहित सब सभा रीझि गई। सो यह पद—

"मन मै रह्यौ नाहिन ठौर॥
नदनदन अछत कैसैं आनियै उर और॥ "

—नागर समुच्चय, पृष्ठ २१२–२१६

उपर्युक्त उल्लेख मे वार्ता के कथन से जो थोडी भिन्नता है, उसका कारण नागरीदास जी की असावधानी है।

---

१ हास्य-व्यग्योक्ति पूर्ण लोक गीत

परिशिष्ट ५

उमेदकुँवरि कृत 'वार्ता' में सूरदास का प्रसग

'सूर सौरभ' (वष १ अक १) पृष्ठ १८ मे उमेदकुवरि को डूगरपुर की रानी बतलाया गया है, और उनकी 'वार्ता' का रचना-काल स० १८६३ लिखा है। उक्त वार्ता मे सूरदास का प्रसग इस प्रकार है,—

दोहा—आए प्रभु के दरस कौं, सूरदास जो नाम।
दरसन करि सुख पाय कै, रहे अडेल[1] सुगाम ॥१॥

चौपाई—गावन कौं जब बैठे आय। गाये पद फाकरे[2] सुनाय ॥
तब प्रभु ऐसी बात जु कही। हरि लीला गावत क्यौं नहीं। २॥
लीला प्रभु की बरनन करौ। जातैं मन कौं आनद धरौ ॥
बोले कछु मैं जानत नहीं। करि सनान आवो प्रभु कही ॥३॥
सूरदास तब न्हाइ सु-आयौ। श्री भागौत आप समझायौ ॥
सब अनुक्रम भगवद लीला कौ। स्थापित हिये सु कीनौ ताकौ ॥४॥
तबनै लाग्यौ प्रभु जस गावन। ताहि सुनत जग होत सु पावन ॥
प्रथम बनाय यहै पद गायौ। गावत ही जु हृदै भरि आयौ ॥५॥

सो यह पद—चकई री चलि चरन सरोवर, जहाँ नहिं प्रेम वियोग।

दोहा—फिर प्रभु के परताप त प्रभु लीला बहु गाय।
जनम समय कौ पद दयौ, प्रभु कौ भेंट पठाय ॥६॥

सो यह पद—ब्रज भयौ महर कैं पूत, जबै यह बात सुनी।
सुनि आनद सब लोग गोकुल गनिक गुनी ॥

चौपाई—देख गुसाई जू सुख पायौ श्रीमुख तब यौं बचन सुनायौ ॥
सूर हुतौ ता समै सुपास। तातैं इन सब कह्यौ प्रकास ॥७॥
कही प्रभू रोहनी जु नाम। भूलि गयौ वह अति अभिराम ॥
यह तुक फिर कैं आप बनाय। श्रीमुख सब सौं कही सुनाय ॥८॥

यह तुक—तब अबर और मँगाय, सारी सुरग घनी।
त दीनी बधूनि बुलाय, जैसी जाहि बनी ॥७॥

दोहा—सूरदास ऐसौ हुतौ प्रभु कौ प्यारौ दास।
ताकी महिमा सकत नहिं, कहिकै मै परकास ॥९॥

---

१ गऊघाट के स्थान पर 'अडेल' का उल्लेख भ्रमात्मक है।

२ फाकडा' नामक सामान्य लोकगीत।

परिशिष्ट ६

रघुराजसिंह कृत 'राम रसिकावली' मे सूरदास का प्रसग

रीवाँ-नरेश रघुराजसिंह (स० १८८०-स० १९३६) सुप्रसिद्ध भक्त-कवि थे। उन्होने अनेक ग्रथो की रचना की थी। उनके द्वारा रचित 'राम रसिकावली' भक्तमाल की कोटि का एक ग्रथ है। इसका रचना-काल स० १९३० के लगभग है। इसमे सूरदास का प्रसग इस प्रकार वर्णित है,—

दोहा—सूरदास जी जग विदित, श्री उद्धव अवतार।
कथा पुराणांतर कथित, वर्णन करौं उदार ॥

चौपाई—जब मथुरा मे श्री नदलाला। गोपिन कों विज्ञान बिसाला ॥
सादर करन हेतु उपदेसू। पठयो उद्धव गोकुल देसू ॥
तहँ गोपिन पर प्रेम परेखी। उद्धव बोले ज्ञान विशेषी ॥
धारि भक्ति हरि निज उर मांही। आवत भे पुर मथुरा कांही ॥
राखि भाव उर गोपिन केरो। लख्यो संग हरि चरित घनेरो ॥
तब उद्धव कों श्री यदुराया। बदरीनाथ कांह पठवाया ॥
यह सुवासना उद्धव के तब। रहौं आप ब्रज एक बार कब ॥
गोपिन कौ अनूप अनुरागा। हरि लीला जो ब्रज सब जागा ॥
सो रसना तें वर्णन करहू। वर संतोष हिये पद धरहूँ ॥
कीन्हें यही वासना काहीं। उद्धव प्रगट भये कलि मांही ॥

दोहा—महा घोर कलिकाल महँ, जन्म लैब दुख दूर।
दृग विकार गुनि याहि तें, सूरदास भे सूर ॥

चौपाई—जन्महि ते हैं नयन विहीना। दिव्य दृष्टि देखहिं सुखभीना ॥

दोहा—ह्वै विरक्त ससार तें, दिव्य दृष्टि हरि ध्यान।
सूरदास करते रहे, निसिदिन विदित जहांन ॥

कवित्त

मतिराम भूषन बिहारी नीलकठ गग, बेनी शम्भु तोष चितामणि कालिदास की।
ठाकुर नेवाज सेनापति शुकदेव देव, पजन घनानद अरु घनश्यामदास की।
सुदर मुरारि बोधा श्रीपति हू दयानिधि युगल कविद त्यौं गोविंद केशवदास की।
भनै रघुराज' और कविन अनूठी उक्ति, मोहि लगी झूंठी जानि जूंठी सूरदास की ॥
अखिल अनूठी उक्ति युक्ति नहिं झूठी नेकु सुधा हू ते सरस सरस को सुनावतो।
उद्धव विराग भाग सहित अनेक राग हरि को अदाग अनुराग को सिखावतो ॥
जगत उजागर अमल पद आगर सु नट नागर स्याय सूर सागर कौ गावतो।
भनै रघुराज' राधा माधव को रास-रस, कौन प्रगटावतो जो सूर नाहिं आवतो ॥